अपनी बात

नई भारत सरकार से तिब्बत समर्थक आशान्वित

भारत के नवनिर्वाचित प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के शपथ–ग्रहण समारोह में निर्वासित तिब्बती सरकार के प्रधानमंत्री (सिक्योंग) डॉ. लोबसांग सांगे को भी सादर आमंत्रण, तिब्बत मामले में नरेन्द्र मोदी के रचनात्मक रूख का प्रमाण है। इस अवसर पर अनेक राज्याध्यक्ष एवं शासनाध्यक्ष उपस्थित हुए। उनमें डॉ. लोबसांग सांगे की सद्भावपूर्ण उपस्थिति ने एक बार नए सिरे से तिब्बत के सवाल को चर्चा के केन्द्र में ला दिया। सबने महसूस किया कि इस सवाल का हल ही विश्व शांति, विशेषकर एशिया में शांति के लिए एक अनिवार्य शर्त है। तिब्बत की निर्वासित सरकार की गृहमंत्री डोल्मा ग्यारी ने बातचीत में तिब्बत की वर्तमान दुर्दशा के बारे में जानकारी देते हुए तिब्बत समर्थकों से सक्रिय भूमिका निभाने हेतु निवेदन किया। मोदी सरकार से उम्मीद बढ़ी है कि वह चीन सरकार से द्विपक्षीय वार्ता करते समय तिब्बत के सवाल को भी गंभीरता से उठाएगी।

केन्द्रीय तिब्बती प्रशासन वर्ष 2014 में परमपावन दलाई लामा जी के योगदान की जानकारी देने हेतु देश–विदेश में स्थानीय स्तर पर अनेक कार्यक्रमों का आयोजन कर रहा है। दलाई लामा जी तिब्बत पर चीन के नाजायज कब्जे के समय से ही विश्व स्तर पर चीन द्वारा तिब्बत में की जा रही दमनात्मक कार्रवाई को उजागर करते हुए तिब्बती आंदोलन के पक्ष में जनमत तथा जनसमर्थन जुटाते रहे हैं। इस समय वे राजनीतिक जिम्मेदारी से स्वयं को मुक्त कर चुके हैं और केवल धार्मिक जिम्मेदारी निभा रहे हैं। इसके बावजूद उनकी विश्वसनीयता विश्व स्तर पर बढ़ती ही जा रही है। वे बौद्ध दर्शन के अनुरूप अहिंसा, करुणा, मैत्री तथा शांति का संदेश पूरी दुनिया में फैला रहे हैं।

दलाई लामा भारतीय इतिहास–संस्कृति–जीवनमूल्य–धर्म–दर्शन को विश्व स्तर पर प्रचारित–प्रसारित–प्रकाशित कर रहे हैं। उन्होंने भारत में अनेक शिक्षण संस्थान चला रखे हैं। उन संस्थानों में संस्कृत एवं भोटी भाषा में कई ग्रंथ प्रकाशित किए जा रहे हैं। कई लुप्तप्राय ग्रंथों एवं पांडुलिपियों के संरक्षण का कार्य जोर–शोर से हो रहा है। पर्यावरण–संरक्षण तथा नशाखोरी के खिलाफ वे लगातार जागरूकता फैला रहे हैं। इस प्रकार भारत में उनका योगदान बहुत ही महत्वपूर्ण है। उनके योगदान के प्रचार–प्रसार द्वारा उनके प्रतिकृतज्ञता ज्ञापन का यह उपयुक्त अवसर है। भारत में रह रहे तिब्बती बंधुओं और अन्य सभी तिब्बत समर्थकों से उम्मीद है कि वे स्थानीय स्तर पर प्रभावी ढंग से अच्छे–अच्छे कार्यक्रम करके दलाई लामा जी के दीर्घायु होने की प्रार्थना करेंगे।

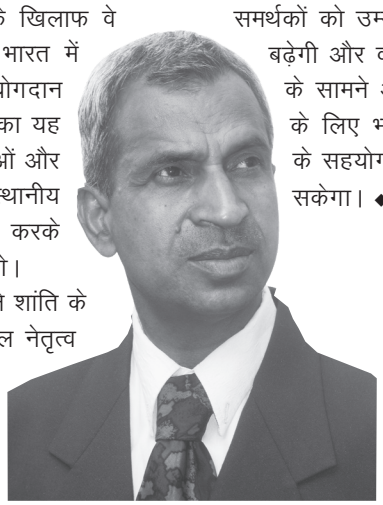

दलाई लामा जी को अबसे 25 वर्ष पहले शांति के लिए नोबल पुरस्कार दिया गया था। उनके कुशल नेतृत्व में चल रहे शांतिपूर्ण तिब्बती संघर्ष की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सराहना हुई थी। वे शुरू से महात्मा गांधी के दर्शन के समर्थक हैं। वे आज भी इसी मत के हैं कि समस्या का समाधान अहिंसक, शांतिपूर्ण तथा प्रेमपूर्ण तरीके से होना चाहिए। उनकी इसी उदारता तथा करूणा का प्रभाव है कि चीन की आम जनता में भी उनके समर्थकों की संख्या बहुत अधिक है। चीनी लोग भी उनके प्रवचनों में शामिल होते हैं तथा उनसे प्रेरित–प्रोत्साहित होते रहते हैं।

लेकिन चिंता की बात है कि चीन सरकार दलाई लामा के विरूद्ध कठोर एवं अमानवीय रूख अपनाए हुए है। वह उन्हें देशद्रोही–विभाजनकारी–आतंककारी बता रही है। तिब्बत में उनकी तस्वीरें रखने पर प्रतिबंध है। तिब्बती दलाई लामा का जन्मदिन मनाने के लिए भी स्वतंत्र नहीं हैं। चीन सरकार द्वारा कुटिलतापूर्वक तिब्बत की धार्मिक–सांस्कृतिक पहचान मिटाई जा रही है। वहां मानवाधिकारों का हनन किया जा रहा है। वहां पर्यावरण खतरे में है। तिब्बत में प्राकृतिक संसाधन चीन द्वारा बर्बाद किए जा रहे हैं। तिब्बत की बुरी स्थिति का इसी से अंदाजा लगाया जा सकता है कि दलाई लामा और डॉ. लोबसांग सांगे द्वारा की जा रही अपीलों के बावजूद कई तिब्बती आंदोलनकारी आत्मदाह जैसा कठोर एवं विचलित करने वाला दुर्भाग्यपूर्ण कदम उठा रहे हैं। इस स्थिति में बदलाव लाना जरूरी है। अजीब विरोधाभास है कि शांति के लिए नोबल पुरस्कार से सम्मानित दलाई लामा ही निर्वासन की जिंदगी जी रहे हैं और उनका देश तिब्बत उपनिवेशवादी चीन सरकार के हाथों तबाह हो रहा है। ऐसे में संयुक्त राष्ट्रसंघ सहित सभी लोकतांत्रिक संस्थाओं की जिम्मेदारी है कि वे चीन सरकार पर दबाव डाल कर तिब्बत समस्या का हल निकालें।

नई मोदी सरकार ने तिब्बत के मामले में अपने रचनात्मक चिंतन को सामने ला दिया है। वह दलाई लामा जी की तिब्बत में ससम्मान वापसी हेतु चीन के साथ वार्ता करे। वह बताए कि भारत चीन संबंधों में मिठास लाने के लिए तिब्बत संकट को दूर करना होगा। पहले ही भारत 1962 में चीन से संबंध मजबूत करने के नाम पर धोखा खा चुका है। तिब्बत पर चीन के अवैध कब्जे का समर्थन भारत के लिए दुखद एवं दुर्भाग्यपूर्ण साबित हो चुका है। तिब्बतियों और तिब्बत समर्थकों को उम्मीद है कि मोदी सरकार के दौरान भारत की ताकत बढ़ेगी और वह पहले की अपेक्षा बहुत अधिक प्रभावी ढंग से चीन के सामने अपनी बातें रख सकेगी। तिब्बत समस्या के समाधान के लिए भारत का शक्तिशाली होना जरूरी है। मजबूत भारत के सहयोग से ही तिब्बती आंदोलन निर्णायक निष्कर्ष तक पहुंच सकेगा। ◆

प्रो0 श्यामनाथ मिश्रा
पत्रकार एवं अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
खेतड़ी (राज.)
ek-&9829806065] 8764060406
E-mail & Facebook :- shyamnathji@gmail.com

निर्वासित तिब्बती प्रशासन ने 2014 को दलाई लामा वर्ष घोषित किया

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 25 मई, 2014)

धर्मशाला स्थित निर्वासित तिब्बती प्रशासन ने 23 मई को घोषणा की है कि वर्ष 2014 को "परमपावन दलाई का वर्ष" के रूप में मनाने के लिए वह इस साल जून से दिसंबर के बीच कुल 25 कार्यक्रमों का आयोजन करेगा। बताया जा रहा है कि यह प्रशासनिक प्रमुख सिक्योंग लोबसांग सांगे के उस वचन के तहत ही किया जा रहा है जो उन्होंने इस साल 10 मार्च को तिब्बती राष्ट्रीय जनक्रांति के अवसर पर दिया था। उन्होंने कथा कि यह "तिब्बत आंदोलन के लिए उनकी उल्लेखनीय उपलब्धियों के प्रति गहरी कृतज्ञता व्यक्त करने का तरीका है और इस तरह से उनके अहिंसा और मानवीय मूल्यों के विचारों को भी बढ़ावा दिया जा सकेगा।"

आयोजन समिति के सह–अध्यक्ष और सूचना एवं अंतरराष्ट्रीय संबंध विभाग के सचिव टाशी फुंत्सोक ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में कहा, "कशाग और केंद्रीय तिब्बती प्रशासन ने वर्ष 2014 को परमपावन दलाई लामा के वर्ष के रूप में समर्पित किया है, ताकि उन्हें उन्होंने अब तक हमें जो इतनी सारी उपलब्धियों और आर्शीवाद की कृपा की है उसकी तिब्बती जनता द्वारा खुशी मनाए, उनको सम्मान दे और अपनी कृतज्ञता जाहिर करे।"

एक ऐसा ही उल्लेखनीय आयोजन 2 अक्टूबर को महात्मा गांधी की जयंती पर होगा। उस दिन दलाई लामा को धर्मशाला और दिल्ली में आयोजित दो समारोह को सुशोभित करने के लिए आमंत्रित किया जाएगा, जिनमें वह टकरावों को दूर करने के लिए अहिंसा और संवाद को बढ़ावा देने के लिए अपनी प्रतिबद्धता प्रकट करेंगे।

एक और महत्वपूर्ण आयोजन 10 दिसंबर को दलाई लामा को नोबेल शांति पुरस्कार मिलने की 25वीं वर्षगांठ को मनाने के रूप में होगा।

हालांकि, फायूल डॉट कॉम की 23 मई की खबर के अनुसार दो आयोजन पहले ही हो चुके हैं, जिनमें अप्रैल में आयोजित पंचेन लामा गेदुन छोक्यी निमा का 25वां जन्म दिन और परमपावन दलाई लामा को नोबेल शांति पुरस्कार मिलने की 25वीं वर्षगांठ का नार्वे के शहर ओस्लो में आयोजन। इस साल 2 सितंबर को आयोजित तिब्बती लोकतंत्र दिवस एक और विशाल स्तर पर आयोजित कार्यक्रम होगा।

आगामी 6 जुलाई को दलाई लामा के जन्मदिन पर निर्वासित आध्यात्मिक नेता को सम्मानित किया जाएगा जो कि मार्च 2011 तक तिब्बत के राजनीतिक नेता भी थे।

यूरोपीय संसद के 73 उम्मीदवारों ने तिब्बत मसले पर समर्थन का वचन दिया

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 24 मई, 2014)

यूरोपीय संसद के लिए चुनाव लड़ रहे 73 उम्मीदवारों ने तिब्बतियों के अधिकारों और स्वाधीनता को समर्थन देने का निर्णय लिया है, इनमें चुनाव लड़ रहे मौजूदा 41 सांसद भी हैं। इन उम्मीदवारों ने कहा है कि वे अगले यूरोपीय संसद में एक तिब्बत इंटरग्रुप की स्थापना के लिए भी समर्थन देंगे। वाशिंगट मुख्यालय वाले इंटरनेशनल कैम्पेन फॉर तिब्बत (आईसीटी) के ब्रसेल्स ऑफिस ने 22 मई को यह जानकारी दी है। उन्होंने आईसीटी द्वारा शुरू किए गए "वर्ष 2014 तिब्बत के लिए" वचन पर दस्तखत कर यह वायदा किया है।

अभी तक इस वचन पर दस्तखत करने वालों में यूरोपीय संघ के 16 देशों के उम्मीदवार और यूरोपीय संसद के सभी राजनीतिक गुटों के लोग शामिल हैं। दस्तखत करने वाले आधे से ज्यादा प्रत्याशी यूरोपीय संसद के ग्रीन/ईएफए ग्रुप से जुड़े हैं और इनमें फ्रांस के इकोलॉजी यूरोप ग्रुप के सभी मौजूदा सांसद भी शामिल हैं। यूरोपियन पीपल्स पार्टी में तिब्बत इंटरग्रुप के मौजूदा अध्यक्ष श्री थॉमस मान ने कहा, "तिब्बत के सवाल को हम जिस तरह से देख रहे हैं, वह यूरोपीय संघ को आइना दिखाता है और यह दुनिया को दिखाता है कि हम अपने मूल्यों के बारे में कितने गंभीर हैं।"

आईसीटी के यूरोपीय संघ के नीति निदेशक श्री विन्सेट मेतेन ने कहा, "तिब्बत इंटरग्रुप द्वारा किए गए विभिन्न प्रयासों की वजह से यूरोपीय संसद यूरोपीय संघ के भीतर तिब्बत का मुख्य समर्थन केंद्र बन गया है।" आईसीटी ने कहा कि चुनाव खत्म हो जाने के बाद वह यूरोपीय संसद के दूसरे सदस्यों से भी इस वचन पर दस्तखत करने की गुजारिश करेगा।

दलाई लामा ने भारत की नई सरकार को दी बधाई

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 20 मई, 2014)

दलाई लामा ने आम चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की निर्णायक जीत के लिए 17 मई को श्री नरेंद्र मोदी को बधाई दी। इसके एक दिन पहले ही भारतीय लोक सभा चुनाव के लिए चुनाव नतीजों की घोषणा हुई थी। उन्होंने भारत को दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश और दक्षिण एशिया का सबसे स्थिर देश बताया जिसकी अहिंसा की गहरी परंपरा रही है। बीजेपी के प्रधानमंत्री पद के घोषित उम्मीदवार मोदी को लिखे पत्र में दलाई लामा ने कहा, "भारत को विविधता में एकता का एक जीवंत देश बताते हुए गर्व होता है, एक प्राचीन देश जहां दुनिया के सभी बड़ी धार्मिक परंपराएं फल–फूल रही हैं और जिससे दूसरे देश भी सीख सकते हैं।"

इसके पहले, 16 मई को धर्मशाला स्थिति निर्वासित तिब्बती प्रशासन के प्रमुख सिक्योंग लोबसांग सांगे ने श्री मोदी और उनकी पार्टी को 16वें लोक सभा के चुनाव में भारी जीत के लिए बधाई दी। उन्होंने सत्ता से बाहर हो रहे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार को भी इस बात के लिए धन्यवाद दिया कि उसने अपने दो पूर्ण कार्यकाल के दौरान तिब्बती जनता को अपना अटल सहयोग दिया है।

गत 19 मई को निर्वासित तिब्बती संसद के उपाध्यक्ष खेनपो सोनम तेन. फेल ने श्री मोदी और उनकी पार्टी को उनकी ऐतिहासिक जीत के लिए बधाई दी। उन्होंने अपने पत्र में तिब्बती जनता की इस उम्मीद को भी जाहिर किया कि नए प्रधानमंत्री "न केवल तिब्बती आंदोलन को समर्थन देने की परंपरा बनाए रखेंगे, बल्कि वह सबके भले के लिए तिब्बत मसले का हल निकालने पर जोर देंगे जिसकी बहुत जरूरत है।"

भारतीय जनता पार्टी 1984 के बाद के बाद भारत में ऐसा पहला राजनीतिक दल बन गई है जिसे अपने दम पर पूर्ण बहुमत हासिल हुआ है, हालांकि, यह पार्टी एक गठबंधन की अगुआ है जिसे राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन कहते हैं।

चीन ने तिब्बती धार्मिक हस्ती को मठ व्यवस्था में शामिल होने से रोका

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 18 मई, 2014)

चीन ने एक वरिष्ठ तिब्बती धार्मिक हस्ती का मठ का चोला उतरवा दिया है और उनके तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र के चामदो का. उंटी के मठ में पुनः शामिल होने या शिक्षण पर रोक लगा दी है। रेडियो फ्री एशिया की 16 मई की खबर के अनुसार खेनपो (मठ अध्यक्ष) लोडोर राबसेल को 5 मई को जेल से रिहा किया गया था। राबसेल को वर्ष 2011 में उनके एक मित्र खेनपो नामसे सोनम के साथ इसलिए गिरफ्तार किया गया था क्योंकि उन्होंने कर्मा मठ में तथाकथित देशभक्ति पुनर्शिक्षा अभियान चलाने के लिए चीनी अधिकारियों को सहयोग देने से इनकार किया था। राबसेल को निंगत्री प्रशासनिक क्षेत्र के पोमे काउंटी स्थित पोओ ट्रामो जेल में दो साल से भी ज्यादा समय तक बंद रखा गया। यह साफ नहीं हो पाया है कि उनकी जेल की सजा पूरी हो गई थी या उन्हें समय से पहले रिहा किया गया। उन्हें चामदो काउंटी स्थित अपने घर जाने देने से पहले नौ दिन तक और रोके रखा गया। वह फिलहाल ट्रांगमोर गांव स्थित अपने घर में बीमार मां की सेवा में लगे हुए हैं। इस भिक्षु की गिरफ्तारी उसी साल 26 अक्टूबर को पड़ोस के कस्बे में स्थित एक सरक. ारी इमारत में बम विस्फोट के बाद की गई थी। इसमें चीनी अधिकारियों ने शक जाहिर किया था कि इस घटना में कर्मा मठ के भिक्षुओं का हाथ है। चीनी पुलिस, अर्द्धसैन्य सशस्त्र पुलिस और सरकार के अधिकारी हर दिन मठ में जाते हैं, बैठकें करते हैं, चेतावनी जारी करते हैं और उस इलाके में समूचे यातायात पर पाबंदी लगा दी जाती है। भिक्षुओं से उनका फोटो, फिंगरप्रिंट, खून और हैंडराइटिंग का नमूना लिया जाता है और सभी से घंटों पूछताछ की जाती है। इन भिक्षुओं को हर दिन तथाकथित देशभक्ति पुनर्शिक्षा में शामिल होने को मजबूर किया जाता है, जिनमें उन्हें निर्वासित तिब्बती आध्यात्मिक नेता दलाई लामा की आलोचना करने को कहा जाता है। इस तरह की अनगिनत बैठकों और जबरदस्ती की वजह से बहुत से भिक्षुओं को मठ छोड़कर भागने को मजबूर होना पड़ा है। राबसेल और सोनम को इस वजह से ही गिरफ्तार किया गया था कि वे इन बैठकों के दौरान चीनी अधिकारियों की बात मानने को तैयार नहीं थे, खासकर दलाई लामा की निंदा करने और तिब्बत को ऐतिहासिक रूप से चीन का हिस्सा मानने को।

निर्वासित तिब्बती आध्यात्मिक नेता ने कोपनहेगन का दौरा संपन्न किया

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 23 मई, 2014)

धर्मशाला में निर्वासित तिब्बती प्रशासन के प्रमुख सिक्योंग लोबसांग सांगे ने 19–20 मई को डेनमार्क की संसद (फोल्केटिनगेट) के पांच से आठ राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों से मुलाकात की। निर्वासित तिब्बती प्रशासन ने अपनी वेबसाइट तिब्बत डॉट नेट पर 22 मई को यह जानकारी दी है। इन प्रतिनिधियों में विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता, एक पूर्व विदेश मंत्री और डैनिश पीपल्स पार्टी के प्रमुख श्री किस्टियन थुलेसेन दहल शामिल थे। डैनिश पीपल्स पार्टी के 22 संसद सदस्य इस बात पर एकराय हैं कि सिक्योंग को उनकी संसद की कार्रवाई में आमंत्रित कर भाषण का मौका दिया जाए। खबर के अनुसार सभी सांसदों ने तिब्बती जनता के उचित और वाजिब स्वशासन के लिए चल रहे अहिंसक आंदा. लन के प्रति अपना समर्थन जताया। उन्होंने कहा कि भीषण दमन के बावजूद निर्वासित तिब्बतियों द्वारा संयत मध्य मार्ग नीति अपनाने ने उन्हें प्रभावित किया है और उन्होंने वचन दिया कि वह अपनी संसद में तिब्बती मसले को उठाएंगे।

सिक्योंग ने मई 2010 में डेनमार्क संसद द्वारा स्थापित डैनिश इंस्टीट्यूट फॉर पार्टीज ऐंड डेमोक्रेसी का दौरा किया। इस संस्था की स्थापना लोकतांत्रिक सहायता को मजबूत करने और उसका संपूरक बनने के लिए की गई है, खासकर राजनीतिक दलों के समर्थन और विकासशील देशों में बहु–पार्टी व्यवस्था के लिए। सिक्योंग का डेनमार्क की राजधानी कोपनहेगन का 18 से 21 मई का यह दौरा केयर तिब्बतन नामक संस्था के आमंत्रण पर किया गया था। यह संस्था डेनमार्क के तिब्बत समर्थन समिति के सहयोग से तिब्बती पहचान के संरक्षण में लगी हुई है। उन्होंने इसके पहले नवंबर 2011 में कोपनहेगन का दौरा किया था।

इसके पहले इसी महीने शहर में तिब्बती आध्यात्मिक नेता दलाई लामा ने भी दौरान किया था, लेकिन उन्होंने सरकार के नेताओं या अधिकारियों से कोई मुलाकात नहीं की थी।

रिहा तिब्बती नेता का स्वागत नायक की तरह किया गया

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 17 मई, 2014)

बारह साल कैद की सजा से 7 मई को रिहा हुए एक तिब्बती व्यक्ति का उनके गांव में नायकों की तरह स्वागत किया गया। सोनम यारफेल, 34 वर्ष, ने मार्च 2008 में सिचुआन प्रांत के कार्जे प्रशासनिक क्षेत्र स्थित त्रेहोर चोगरी कस्बे में चीनी शासन के खिलाफ विरोध प्रदर्शन में हिस्सा लिया था। उन्हें तय समय से छह महीने पहले ही रिहा कर दिया गया। रेडियो फ्री एशिया की 15 मई की रिपोर्ट के अनुसार सोनम का उनके दिल्यू गांव के 100 से ज्यादा निवासियों ने स्वागत किया। मार्च 25 का यह विरोध प्रदर्शन वर्ष 2008 में तिब्बती पठार में फैले व्यापक जनक्रांति का ही हिस्सा था। इस जनक्रां. ति को दबाने के लिए चीन ने भारी सुरक्षा अभियान चलाए थे जिसके तहत बड़े पैमाने पर लोगों की हत्याएं की गईं, गिरफ्तारियां की गईं और तिब्बती पठार को बाहरी दुनिया से पूरी तरह से काट दिया गया। सोनम यारफेल को 2 अप्रैल, 2008 को गिरफ्तार किया गया और बाद में प्रांतीय अदालत ने उन्हें कैद की सजा सुनाई। उनके खिलाफ यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने राष्ट्रीय स्थिरता को खतरा पहुंचाया है और देश से बाहर अलगाववादियों को सूचनाएं पहुंचाई हैं। चीन में वैसे तो अच्छे व्यवहार वाले कैदियों को समय से पहले रिहा करने की नीति है, लेकिन अभी यह पता नहीं चल पाया है कि सोनम यारफेल को इस वजह से जल्दी रिहा किया गया या किसी और वजह से।

इसके पहले 1 अप्रैल को सेडाक गोनपो को भी छह साल जेल में रखने के बाद रिहा किया गया था जो वर्ष 2008 में सिचुआन प्रांत के नाबा प्रशासिनक क्षेत्र में विरोध प्रदर्शन का नेतृत्व किया था।

अपनी भाषा को बचाने का आह्वान करने वाला गीत गाने पर तिब्बती गायक को चीन ने किया गिरफ्तार

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 28 मई 2014)

चीनी शासन वाले तिब्बत में तिब्बती भाषा और सांस्कृतिक विरासत को बढ़ावा देने की बात करना गैरकानूनी है। वहां हाल के वर्षों में विद्वानों, आंदोलनकारियों, शिक्षकों और अन्य लोगों के गिरफ्तारी की लहर चली है तथा तिब्बती स्कूलों और कोचिंग क्लासेज को बंद कराया गया है। हाल में ऐसी एक नवीनतम घटना में गेबे नाम के एक लोकप्रिय गायक को सिचुआन प्रांत में स्थित नाबा प्रशासनिक क्षेत्र के जुंगछू (चीनी में सोंगपान) काउंटी की पुलिस अपने साथ ले गई। रेडियो फ्री एशिया (वाशिंगटन) की 26 मई की खबर के अनुसार इसके एक हफ्ते पहले 24 मई को वीकेंड की शाम को आयोजित एक संगीत समारोह में गेबे ने एक गीत गाया था जिसमें तिब्बती भाषा को बचाने का आह्वान किया गया था। खबर के अनुसार चीन को यह डर था कि चीनी शिक्षण व्यवस्था से बाहर तिब्बत में समुदाय द्वारा आयोजित तिब्बती भाषा की काफी लोकप्रिय हो रही कक्षाओं से चीनी शासन के विरोध को हवा मिलेगी।

"अभी तक नहीं किया" शीर्षक का यह गीत अपनी भाषाई विरासत को बच. ाने के तिब्बतियों के भीतर मौजूद मजबूत भावना पर आधारित था और इसे श्रोताओं की खूब तारीफ मिली। प्रशासनिक क्षेत्र के मुख्यालय बरखम (माएरकांग) काउंटी के रहने वाले गेबे को कॉन्सर्ट हॉल के बाहर ही चीनी पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। उनके साथी साथियों और समारोह के आयोजकों की तमाम अनुनय–विनय पर पुलिस ने कोई ध्यान नहीं दिया।

इस गायक का पिछला डीवीडी एल्बम "विजेता देवता, विजेता तिब्बत" वर्ष 2012 में रिलीज किया गया था।

वर्ष 2012 से अब तक कम से कम 10 लोकप्रिय तिब्बती गायकों को गिरफ्तार किया गया है। इनमें लोलो भी शामिल हैं जिन्होंने "बर्फभूमि के बच्चों, तिब्बती झंडा फहराओ" गीत गाया था, इस गीत को तिब्बत में चीनी शासन के लिए सीधी चुनौती माना गया था। इनमें से कई को बाद में छह साल के लिए जेल में डाल दिया गया।

संयुक्त राष्ट्र ने तिब्बतियों को उनके नोमैडिक जमीन से जबरन हटाने की चीन की नीति पर सवाल उठाए

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 11 मई, 2014)

संयुक्त राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार समिति (ईएससीआर) ने तिब्बती घुमंतू लोगों (नोमैड) को जबरन उनके पूर्वजों की जगह से हटाने से जुड़े तीन मसलों के बारे में गत 8 मई को चीन से सवाल किए हैं। इन मसलों पर प्रदर्शन की आठ घंटे तक चली समीक्षा बैठक के दौरान समिति ने 17 लाख तिब्बती नोमैड के जबरन विस्थापन, तिब्बती जनता के साथ भेदभाव न होने के अधिकार का चीन द्वारा उल्लंघन और तिब्बतियों को अपने सांस्कृतिक एवं धार्मिक आज़ादी के पूरी तरह से पालन कर सकने की जरूरत के बारे में चीन से सवाल किए।

हालांकि, चीन ने दावा किया है कि जबरन लोगों को हटाने की नीतियां 100 फीसदी स्थानीय तिब्बती जनता के परामर्श से चलाई जा रही हैं। चीन ने यह भी साफ किया है कि हजारों साल से पीढ़ी–दर–पीढ़ी जो जमीन नोमैड के पास थी, वह अब उनकी नहीं है क्योंकि तिब्बत का 1949 में चीन में विलय के बाद इसका स्वामित्व चीन के पास चला गया है।

इस तथ्य को देखते हुए कि ईएससीआर को तिब्बती नौमैड अपना पक्ष नहीं बता पाते, क्योंकि चीन उन्हें कभी भी उन्हें इसकी इजाजत नहीं देता और जो लोग किसी तरह ऐसा कर भी लेते हैं, उनकी बुरी तरह पिटाई की जाती है, चीन के सामने ऐसे मसले उठाने की क्षमता पर बुरा असर पड़ता है।

इस साल 26 जनवरी को चीन की ऑनलाइन तिब्बत समाचार सेवा ईएनजी डॉट तिब्बत डॉट सीएन ने देश की सरकारी समाचार एजेंसी शिनहुआ न्यूज एजेंसी के हवाले से खबर दी है कि तिब्बत स्वायत्तशासी क्षेत्र में वर्ष 2006 में शुरु की गई 23 लाख किसानों और चरवाहों के पुनर्वास की परियोजना वर्ष 2013 के अंत तक पूरी हो चुकी है।

इसके अलावा वीओए न्यूज डॉट कॉम ने भी आधिकारिक तिब्बत टीवी वेबसाइट के हवाले से यह खबर दी है कि क्विंघई प्रांत की पंचवर्षीय योजना के तहत भी वहां रह रहे 90 फीसदी तिब्बती नोमैड को इस साल के अंत तक नई जगह पर बसा दिया जाएगा।

गोलोग जिग्मे ने अपनी गिरफ्तारी और चीनी जेल से भागने की बताई कहानी

(तिब्बत डॉट नेट, धर्मशाला, 28 मई, 2014)

हाल में तिब्बत से भागकर भारत आए तिब्बती राजनीतिक कैदी और समाजसेवी गोलोग जिग्मे ने तिब्बती राजनीतिक कैदियों को चीनी अधिकारियों से मिलने वाली भयानक शारीरिक प्रताड़ना और मानसिक आघात की कहानी बताई है। उन्होंने चीन सरकार से यह आग्रह किया है कि तिब्बती फिल्म निर्माता धोनढुप वांगछेन और अन्य तिब्बती राजनी. तिक कैदियों को समय से रिहा करें जिन्हें तिब्बत में अकल्पनीय प्रताड़ना और कैद का शिकार होना पड़ रहा है।

धर्मशाला में आयोजित एक प्रेस कॉन्फ्रेंस में गोलोग जिग्मे उर्फ जिग्मे ग्यात्सो ने बताया कि सबसे पहले उन्हें वर्ष 2008 में गिरफ्तार कर जेल में डाला गया था, इस आरोप में कि उन्होंने एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म "भय को पीछे छोड़ा" बनाने में फिल्म निर्माता धोनढुप वांगछेन की मदद की है। उन पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने चीन सरकार के खिलाफ होने वाले हिंसक विरोध प्रदर्शन में हिस्सा लिया है और परमपावन दलाई लामा की मानहानि करने वाले बयान देने से इनकार किया है।

"जब मुझे पहली बार गिरफ्तार किया गया, मेरे हाथ और पैर बांध जंजीरों से बांधकर रखे गए थे और मुझे दस घंटे तक लटकाए रखा गया। इसके बाद मुझे कई बार इसी तरह से प्रताड़ित किया गया और अक्सर यह 2 से 5 घंटे तक चलता था। यहां तक कि ठंड होने पर मेरी रीढ़ की हड्डी, घुटने और पसलियों में आजतक दर्द होता है।"

अपने कटु अनुभवों को याद करते हुए गोलोग जिग्मे ने चीनी जेल के अपने अनुभवों को विस्तार से बताया, जहां उनको बर्बर तरीके से प्रताड़ित किया गया था, जिसकी वजह से उन्हें गंभीर चोटें आईं, पसली टूट गई, कंधे की हड्डी खिसक गई और घुटने क्षतिग्रस्त हो गए। उन्होंने बताया, "जब मुझे पहली बार गिरफ्तार किया गया, मेरे हाथ और पैर बांध जंजीरों से बांधकर रखे गए थे और मुझे दस घंटे तक लटकाए रखा गया। इसके बाद मुझे कई बार इसी तरह से प्रताड़ित किया गया और अक्सर यह 2 से 5 घंटे तक चलता था। यहां तक कि ठंड होने पर मेरी रीढ़ की हड्डी, घुटने और पसलियों में आजतक दर्द होता है।"

गोलोग को पहली गिरफ्तारी के कुछ महीनों के बाद ही गिरफ्तार किया गया था। हालांकि, चीनी पुलिस द्वारा लगातार प्रताड़ित किया जाता रहा और फिर चीनी पुलिस ने गलत आरोप लगाकर गिरफ्तार कर लिया और जेल में डाल दिया। उन पर यह आरोप भी लगाया गया कि उन्होंने तिब्बत में आत्मदाह को बढ़ावा दिया है और देश की गोपनीय जानकारियां बाहरी ताकतों तक पहुंचाई हैं।

तीसरी बार कैद में डालने के दौरान चीनी जेल अधिकारियों ने उन्हें स्वास्थ्य संबंधी जांच के लिए एक अस्पताल में ले जाने के लिए दबाव डाला। बाद में पता चला कि चीनी अधिकारी उन्हें गलत दवाएं देकर जान से मारने की योजना

गोलोग जिग्मे (बाएं से दूसरे) 28 मई को आयोजित एक संवाददाता सम्मेलन में अपना बयान पढ़ते हुए। इस अवसर पर मौजूद पूर्व तिब्बती सांसद सरथार सुलत्रिम (बाएं) और टीसीएचआर की निदेशक सुश्री सेरिंग सोमो। फोटोः डीआइआइआर

बना रहे हैं, इसकी वजह से ही वह जेल से भाग जाने को प्रेरित हुए।

गोलोक जिग्मे ने याद करते हुए बताया, "जब मुझे यह पता चला कि वे मुझे मारने की योजना बना रहे हैं तो मैंने भाग जाने का निर्णय लिया। 30 सितंबर को मैं रात को आठ बजे सोया। दो गॉर्ड में से एक किसी जरूरी काम से जल्दी चला गया और दूसरा आधी रात को सो गया। परमपावन की प्रार्थना करने के बाद और कुछ प्रयास से मैं अपने को बेड़ियों से आजाद करने में सफल हो गया। मैंने देखा कि दूसरे गॉर्ड मह जोंग (रमी जैसा चीनी खेल) खेलने में व्यस्त हैं। मैं धीरे से बाहर निकल गया तो देखा कि सौभाग्य से मेन गेट खुला हुआ है। बाहर निकलते ही मैं तेजी से दौड़ पड़ा।"

हालांकि, वह कुछ ही समय तक ही आज़ाद रह पाए। चीन सरकार ने उनके ऊपर कत्ल का आरोप लगाकर उनके बारे में जानकारी देने वाले को भारी ईनाम देने की घोषणा की।

उन्होंने बताया, "दो महीने तक मैं पहाड़ों में इधर–उधर भागता रहा और इसके बाद मुझे यह देखकर धक्का लगा कि चीन सरकार ने मेरे ऊपर कत्ल का इल्जाम लगा दिया है। चीन सरकार ने मेरे बारे में जानकारी देने वाले को 2 लाख रेनमिनबी (चीनी मुद्रा) देने की घोषणा की थी। इसके पहले जब मैं कैद में था तो चीन सरकार ने कभी भी ऐसा आरोप नहीं लगाया था और मेरा कभी भी किसी की जान लेने का इरादा नहीं था। मेरे मन में तो यह भी आया कि सिचुआन या गांसू के किसी पुलिस थाने में आत्मदाह कर ऐसे झूठे आरोप का विरोध करूं।" उन्होंने कहा, "लेकिन ठंडे दिमाग से काफी सोचने के बाद मैंने ऐसा कुछ न करने का निर्णय लियाः मुझे लगा कि मेरे भाग जाने से शर्मिंदा होने के नाते वे ऐसे आरोप लगा रहे हैं, यदि मैंने आत्मदाह कर लिया होता तो वे ऐसे अकल्पनीय आरोप लगाकर आगे भी मेरी मानहानि जारी रखते। लेकिन यदि मैं जिंदा रहा तो तिब्बत के हित के लिए आगे भी सेवा दे सकूंगा। इस तरह मैंने अपना निर्णय बदल लिया।"

चीनी जेल से भागने के बाद एक साल और आठ महीने तक गोलोग जिग्मे पहाड़ों, नदियों के पास और जंगलों में छिपे रहे। इसके बाद कुछ दिनों पहले ही वह अचानक भागकर केंद्रीय तिब्बती प्रशासन के मुख्यालय धर्मशाला आ गए। गोलोग जिग्मे के बेहतरीन सामाजिक कार्यों में फिल्म "भय को पीछे छोड़ा" के निर्माण में सहयोग करना शामिल है जिसके लिए उनको काफी ख्याति मिली। उन्हें हाल में रिपोर्टर्स विदाउट बॉर्डर्स द्वारा विश्व प्रेस स्वतंत्रता दिवस पर '100 सूचना नायकों' में शामिल किया गया था। इस अवसर पर जारी चार पेज के बयान के अनुसार गोलोग जिग्मे ने इस बात पर जोर दिया कि चीन सरकार द्वारा परमपावन दलाई लामा की मानहानि, तिब्बती मठों में जबरन पुनर्शिक्षा नीति, तिब्बती भाषा और पहचान को नष्ट करने, तिब्बतियों का हाशियाकरण, लोगों की वास्त. विक आकांक्षाओं का गला घोंटना और तिब्बती जनता का उत्पीड़न, ऐसे बड़े कष्ट हैं जिनका तिब्बत के भीतर रहने वाले तिब्बतियों को सामना करना पड़ता है। उन्होंने तिब्बत के मसले को हल करने के लिए परमपावन दलाई लामा के मध्य मार्ग नीति के प्रति भी अपना समर्थन जाहिर किया और बताया कि तिब्बत के भीतर रहने वाले 99 फीसदी तिब्बती मध्यम मार्ग नीति का समर्थन करते हैं। इस प्रेस कॉन्फ्रेंस का आयोजन धर्मशाला स्थित तिब्बती मानवाधिकार एवं लोकतंत्र केंद्र (टीसीएचआरडी) ने स्विट्जरलैंड स्थित संस्था 'फिल्मिंग फॉर तिब्बत' के साथ गोलोग जिग्मे की आज़ाद दुनिया में स्वागत करने और तिब्बत में उनके सामाजिक कार्य को समर्थन देने के लिए किया था।

दलाई लामा का फ्रैंकफर्ट का सार्थक दौरा संपन्न

(तिब्बतन रीव्यू डॉट नेट, 18 मई, 2014)

परमपावन दलाई लामा 16 मई 2014 को जर्मनी के शहर फ्रैंकफर्ट में जर्मन स्पीकर्स ग्लोबल अवॉर्ड हासिल करते हुए। फोटोः मैनुअल बैकुअर

तिब्बत के निर्वासित आध्यात्मिक नेता, दलाई लामा रिगा (लातविया), ओस्लो (नार्वे), रोटरडम एवं हेग (हॉलैंड) और फ्रैंकफर्ट (जर्मनी) का दौरा संपन्न करने के बाद 17 मई को धर्मशाला भारत लौट आए। यह दौरा 4 मई को शुरू हुआ था। दलाई लामा फ्रैंकफर्ट में 13 मई की दोपहर को पहुंचे थे और अगले तीन दिनों में उन्होंने वहां सार्वजनिक व्याख्यान दिए, स्कूली बच्चों और धार्मिक हस्तियों से संवाद किया और मीडिया को संबोधित किया। उनका जर्मनी के हेसे राज्य के मंत्री–प्रेसिडेंट श्री वोलकर बॉफियर और अन्य राजनीतिक नेताओं ने स्वागत किया। बॉन विश्वविद्यालय के तिब्बती शिक्षक दागयाब रिनपोछे जी द्वारा स्थापित तिब्बत हाउस में परमपावन का 13 मई को स्वागत करते हुए बॉफियर ने कहा, "परमपावन, हम आपसे मुलाकात कर और आपको अपने संदेश हमसे साझा करने का अवसर देकर बेहद खुश हैं। हम दशकों से आपके तथा तिब्बत में शांति एवं स्वाधीनता के लिए आपके काम के प्रशंसक रहे हैं। जर्मनी में हम आत्मनिर्धारण, मानवाधिकारों और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व का साफतौर से सम्मान करते हैं।"

दलाई लामा ने 14 मई की सुबह मीडिया को संबोधित किया और फ्रैपोर्ट एरेना में "आत्म जागरण एवं करुणा" विषय पर एक सार्वजनिक व्याख्यान दिया जिसमें करीब 4,800 लोग उपस्थित थे।

अगले दिन सुबह दलाई लामा ने मॉडर्न आर्ट के ऑइकोनिक म्यूजियम में पूरे जर्मनी से आए तिब्बतियों से बात की। इसके बाद सेंट पाल्स चर्च–पॉलस्किर्चे में उन्होंने दो सार्वजनिक व्याख्यान को संबोधित किया। पहले व्याख्यान में समूचे फ्रैंकफर्ट से आए करीब 900 स्कूली बच्चे शामिल थे और इसका विषय था–"हमारी साझी दुनिया में धर्मनिरपेक्ष नीतिशास्त्र"। फ्रैंकफर्ट के मेयर पीटर फेल्डमान ने उनका स्वागत किया और परिचय कराया। फेल्डमान ने कहा कि फ्रैंकफर्ट एक सहिष्णु, बहु–सांस्कृतिक समाज है जिसमें बहुत से पंथों और भाषाओं के लोग रहते हैं। उन्होंने कहा कि तिब्बत हाउस ने शहर के आम जीवन में कई प्रमुख रचनात्मक योगदान किया है।

बाद में दोपहर को दलाई लामा ने "धर्मशास्त्र से परे नीतिशास्त्र" विषय पर एक सार्वजनिक व्याख्यान दिया। राज्य सरकार के एकीकरण विभाग के प्रमुख डॉ. एस्कान्डेरी–ग्रुनबर्ग ने इस विषय का प्रवर्तन किया। इस चर्चा में शामिल होने वाले अन्य प्रमुख लोगों में त्रिएर के पादरी बिशप डॉ. स्टीफन आकरमान और गोएथ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. रेनर फॉर्स्ट शामिल थे। इस चर्चा का आयोजन शहर में स्थित गोएथ विश्वविद्यालय और तिब्बत हाउस जर्मनी द्वारा संयुक्त रूप से किया गया था।

गत 16 मई को दलाई लामा ने एक समूह 'फ्रेंड्स फॉर अ फ्रेंड' के अनुरोध पर करीब 80 कारोबारियों, मनोरंजन क्षेत्र से जुड़े लोगों, शिक्षकों और अन्य लोगों के एक समूह से बात की। इसके बाद अनूठे विचारों वाले नेतृत्वकारी लोगों के एक स्वयंसेवी संगठन जर्मन स्पीकर्स एसोसिएशन ने परपमावन दलाई लामा को वर्ष 2014 का ग्लोबल अवॉर्ड प्रदान किया। संगठन ने उनको अवॉर्ड देते हुए कहा कि दलाई लामा ने दुनिया भर के लोगों को प्रेरित किया है और उनके दिल को छुआ है और उन्होंने तिब्बत में स्वाधीनता की वकालत के मामले में काफी उदारता दिखाई है। दलाई लामा की यह जर्मनी की 37वीं यात्रा थी, वर्ष 1973 के बाद यूरोप में उन्होंने सबसे ज्यादा इसी देश की यात्रा की है।

क्या चीन अल्पसंख्यकों के बारे में नीतियों को बदलेगा?

(21 मई, 2014, हफिंगटन पोस्ट)
FkcVu lkeQy

तिब्बत के देहाती इलाके युन्नान स्थित डेछेन के इस हफ्ते अपने दौरे में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के पोलित ब्यूरो की स्थायी समिति के सदस्य और चीन की शीर्ष सलाकार बोर्ड के अध्यक्ष यू झेंगशेंग ने तिब्बती बौद्ध नेताओं को यह आश्वासन दिया कि धार्मिक आज़ादी सुनिश्चित करने के लिए पार्टी पूरी तरह से अपनी नीतियो को लागू करेगी।

हम यह नहीं जानते कि तिब्बती जनता ऐसे आश्वासनों में कितना भरोसा करती है, लेकिन इस बात को लेकर तो हम निश्चित हैं कि चीन की अल्पसंख्यक नीति पर अपनी राय प्रकट करने वाले ज्यादातर चीनी बुद्धिजीवी ऐसे आश्वासनों से खुश नहीं हैं। वास्तव में वे चीन की मौजूदा अल्पसंख्यक नीतियों की आलोचना में व्यस्त हैं। जहां तक, अल्पसंख्यक नीतियों की बात है, चीन में फिलहाल हंड्रेड फ्लावर्स (सौ फूल) आंदोलन चल रहा है। चीन की अल्पसंख्यक नीति में बदलाव की सिफारिशें आसमान में खिल रहे तमाम फूलों की तरह बढ़ रही हैं।

कभी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के ही द्वारा ही परिरक्षित रही चीन की अल्पसंख्यक नीति अब लगता है कि चीनी जनता के लिए बहस के लिए खुल गई है। पार्टी के भीतर और बाहर के तमाम विद्वान एवं अधिकारी इस मौके का इस्तेमाल ऐसे मसले पर अपनी चिंता जाहिर करने के मौके पा रहे हैं जो कभी एक संवदेनशील विषय कहा जाता था।

चीन की अल्पसंख्यक नीति पर बहस सार्वजनिक क्यों हो गई है? कहीं ऐसा तो नहीं है अल्पसंख्यकों के लिए नई नीति बनाने से पहले पार्टी जनता की राय जाननी चाह रही हो?

जो भी हो, पार्टी की मौजूदा अल्पसंख्यक नीति के बारे में ज्यादातर चीनी बुद्धिजीवियों की राय यही है कि यह एक बड़ी विफलता है। वर्ष 2008 में समूचे तिब्बत में फैले विरोध प्रदर्शन और 2009 में उरुमक्वी में हुई हिंसा ऐसी नीतियों के खिलाफ बनी भावनाओं का एक तरह का जन विस्फोट ही था। पिछले साल बीजिंग के केंद्र में हुए एक आत्मघाती हमले में 29 लोगों की मौत, इस साल मार्च में कनमिंग रेलवे स्टेशन पर 130 लोग घायल हो जाना, हाल में सीक्यांग में राष्ट्रपति शी जिनपिंग के दौरे के दौरान सीक्यांग में हिंसा की लहर की वजह से इन विद्व ानों को चीन की अखंडता को लेकर चिंता बढ़ गई है। चीन की अखंडता बने रहने पर इस चिंता ने विद्वानों को कुछ पुराने नीतिगत विकल्प बताने को मजबूर किया है।

राष्ट्रीय अखंडता को मजबूत करने के लिए अल्पसंख्यक नीतियों में सुधार कैसे करें, इस बारे में अल्पसंख्यक मामलों को देख रहे कुछ चीन के सम्मानित विद्वानों और शीर्ष अधिकारियों की सोच के विभिन्न पहलुओं को जेम्स लीबोल्डे ने अपने सारगर्भित अध्ययन एथनिक पॉलिसी इन चाइनाः इज रिफॉर्म इनवाइटेबल (चीन की नस्लीय नीतिः क्या सुधार अपरिहार्य हैं) में संग्रहित और विश्लेषित किया है।

एक नई अल्पसंख्यक नीति के बारे में चीनियों की सोच को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः सत्ता प्रतिष्ठान के विद्वानों एवं अधिकारियों, अति–राष्ट्रवादियों, उदारवादियों और पार्टी प्रतिष्ठान की सोच। युगोस्लोवाकिया के टूटने और सोवियत संघ के विघटन को देखते हुए यह साझा विचार बन रहा है कि आखिर चीन को अपने अल्पसंख्यकों के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए।

ऐसी नियति से बचने के लिए स्वायत्तता और अल्पसंख्यकों को आज़ादी बढ़ाने की जगह विद्वान और अधिकारी यह सलाह दे रहे हैं कि स्वायत्तता में कटौती की जाए और अल्पसंख्यकों के साथ होने वाला तरजीही व्यवहार बंद किया जाए ताकि जिन्हें मौजूदा विधान में 'बहुत ज्यादा सिर चढ़ा लिया गया है'। चीन की अल्पसंख्यक नीतियों में सुधार की जिम्मेदारी पीकिंग यूनिवर्सिटी में समाजशास्त्र के डीन और निदेशक मा रोंग, सिंघुआ विश्वविद्यालय में समसामयिक चीन अध्ययन संस्थान के निदेशक हू अनगांग और कभी यूना. इटेड फ्रंट वर्क डिपार्टमेंट में कार्यकारी निदेशक रहे झू वेइकुम को सौंपा गया है। उन्होंने सिफारिश की है कि अल्पसंख्यकों की विशिष्टता को खत्म करना चाहिए और अल्पसंख्यकों को चीनी पहचान में मिलाने की कोशिश करनी चाहिए। उन्होंने उदाहरण दिया है कि अमेरिका, भारत और ब्राजील में ऐसे मॉडल बहुत सफल हुए हैं।

कुछ लोग तो इसमें और आगे बढ़ना चाहते हैं। स्वर्गीय चीनी राष्ट्रपति ली शियानियान के दामाद और जनमुक्ति सेना के नेशनल डीफेंस यूनिवर्सिटी में राजनीतिक प्रमुख जनरल लिउ याझू ने सिफारिश की है कि तिब्बत और सीक्यांग स्वायत्तशासी क्षेत्र को तोड़कर इन्हें छोटी–छोटी ईकाइयों में बांट दिया जाए तथा बीजिंग के शासन को और मजबूत करने के लिए इन इलाकों में चीनी लोगों को बसने को प्रोत्साहित किया जाए।

ऐसे हमलों की स्थिति में चीनी उदारवादी आखिर इस मसले को कैसे देखते हैं? लीबोल्ड के अनुसार चीनी उदारवादी या

तो हार मान रहे हैं या जो लोग ज्यादा मुखर हैं उन्हें जेल में डाल दिया जा रहा है। चीनी उदारवादी इसके पहले उन अल्पसंख्यकों को आत्मनिर्धारण का अधिकार देने की मांग करते थे जिन्हें चार्टर 08 में कोई स्थान नहीं मिला है। चार्टर 08 ऐसा दस्तावेज है जिसमें चीनी समाज के एक वर्ग की उच्चतम आकांक्षाओं से जुड़ा है कि आखिर वे देश को किस तरह से विकसित होने देना चाहते हैं।

लीबोल्ड के अनुसार, लिउ शियाओबो (नोबेल पुरस्कार से सम्मानित जेल में बंद विद्वान) का तर्क यह था कि तिब्बत मसले के किसी भी तरह के समाधान के लिए पूर्व शर्त यह है कि पूरे चीन का लोकतंत्रीकरण किया जाए। लेकिन अल्पसंख्यक नीति बनाने वाले नीति–नियंताओं के दिमाग में तो यह दूर–दूर तक नहीं दिखता।

लीबोल्ड के विश्लेषण में चीनी प्रतिष्ठान के उस अलहदा राय को शामिल नहीं किया गया है जो अल्पसंख्यकों से न सही, दलाई लामा के साथ भी किसी दूसरे तरीके से पेश आने की सलाह देते हैं। बीजिंग स्थित केंद्रीय पार्टी स्कूल के जिन वी सिफारिश करते हैं कि चीन को दलाई लामा को हांगकांग या तिब्बत बुलाना चाहिए ताकि उनके उत्तराधिकारी के चयन में उनका सहयोग हासिल किया जा सके।

इस विश्लेषण में चीन के अल्पसंख्यक नीति को बदलने के समूचे कोलाहल भरे बातचीत में खुद अल्पसंख्यकों की आवाज भी कहीं नहीं दिखती। जिसे कुछ विद्वान दूसरी पीढ़ी की अल्पसंख्यक नीति बता रहे हैं, उसमें जरा सा कहीं यह संकेत भी नहीं मिलता कि देश में अल्पसंख्यकों के भविष्य के दर्जे के बारे में खुद उनसे राय ली जाएगी। आम राय इस बात पर है कि अल्पसंख्यकों को यह बताने की जरूरत नहीं है कि वे वह नहीं हैं जो वह अपने को कहते हैं। इस तरह की खतरनाक नीति की सिफारिश को यदि अपनाया गया तो चीन को उससे बड़े आग से निपटना होगा, चीन अभी जिस तरह की छिटपुट आग को तिब्बत और सीक्यांग में बुझाने की कोशिश कर रहा है।

मेल्टिंग पॉट सिस्टम यानि सभी अल्पसंख्यकों को एक राष्ट्रीयता के तहत रखने की व्यवस्था अमेरिका, भारत और ब्राजील में इस वजह से कारगर हुई है क्योंकि वे मजबूत लोकतंत्र हैं जिसकी दीर्घकालिक रूप से स्थापित परामर्शकारी राजनीतिक संस्कृति है। तिब्बती, उइगर और मंगोलियाई एक अलग नस्लीय पहचान रखने के लिए संघर्ष कर रहे हैं क्योंकि चीन की मौजूदा अल्पसंख्यक नीति के तहत भी उन्हें निर्णय लेने की प्रक्रिया से बाहर रखा जा रहा है।

(थुबटेन सामफेल धर्मशाला, भारत स्थित केंद्रीय तिब्बती प्रशासन के अनुसंधान केंद्र तिब्बत नीति संस्थान के निदेशक हैं। वह एक पुस्तक 'फालिंग थ्रू द रूफ' के लेखक हैं। उन्होंने कोलंबिया यूनिवर्सिटी के ग्रेजुएट स्कूल ऑफ जर्नलिज्म से स्नातक किया है)

ऐतिहासिक तथ्यों से निकल सकता है तिब्बत मसले का हल

(एशिया टाइम्स ऑनलाइन, 26 मई, 2014)
tEik ruftu

इस साल शिमला समझौते की 100वीं वर्षगांठ है। यह समझौता वर्ष 1914 में शिमला में तिब्बत, ब्रिटिश भारत और चीन के बीच आयोजित एक त्रिपक्षीय वार्ता की परिणति था। उधर 23 मई को उस 17 बिंदुओं वाले समझौते के 63 साल हो गए हैं जो तिब्बत और चीन जनवादी गणतंत्र (पीआरसी) के बीच 1951 में तिब्बती इलाके के भौतिक वि. भाजन के लिए हुआ था। एक शताब्दी बीत गया है, लेकिन तिब्बत और चीन अब भी उलझे हुए हैं। कई चीनी विद्वानों का यह मानना है कि पीआरसी की मौजूदा नस्लीय नीति दोषपूर्ण है और पहली बार में ही इसे गलत समझा जा सकता है। उनका मानना है कि देश के विभिन्न वर्गों को विभिन्न तरह के पहचान नाम देने से चीन जैसे बड़े और विविध देश में विभाजन पैदा होता है। इसलिए लोगों को विभिन्न तरह की राष्ट्रीयताओं में वर्गीकृत करना बुनियादी रूप से एक एकीकृत और सौहार्दपूर्ण चीन के लिए विष जैसा है। इन विद्वानों का मानना है कि चीन को 'नस्लीय' और 'राष्ट्रीयता' जैसे शब्दों से छुटकारा पा लेना चाहिए और सभी लोगों को एक विशाल 'मे. ल्टिंग पॉट' में समाहित कर देना (उन्हें ज्यादा एकरूप बनाना) चाहिए। कुछ दूसरे विचारकों का मानना है कि मौजूदा नस्ल आधारित समस्याएं चीन बैल का सींग पकड़कर यानि समस्या का सामना करने और उससे खुलकर निपटने से ही सुलझा सकता है। तिब्बत के लंबे समय से चले आ रहे मसले को सुलझाने के लिए उनका कहना है कि परस्पर स्वीकार्य हल तलाशने की कुंजी 'दलाई लामा' ही हैं। बुजुर्ग तिब्बती कम्युनिस्ट बापा फुंत्सो वांगये, जिनका हाल में बीजिंग में निधन हो गया, ने 29 अक्टूबर, 2004 को तत्कालीन चीनी राष्ट्रपति हू

जिनताओ को लिखे एक पत्र में ऐसी ही राय जाहिर की है।

जब साझे विकार के कई उपचार होते हैं, तो तिब्बत के मसले का भी निश्चित रूप से कोई व्यावहारिक समाधान निकल सकता है। मेरे हिसाब से पहला समाधान यह है कि चीनी नेतृत्व शिमला समझौते और 17 बिंदुओं वाले समझौते पर नए सिरे से गौर करे।

इन दस्तावेजों में तिब्बत और तिब्बती जनता को जिस स्तर की स्वायत्तता दी गई है, यदि उसे एकसमान तरीके से समूचे तिब्बती पठार पर लागू किया जाए तो ऐसा समाधान निकाला जा सकता है जो तिब्बती जनता की वाजिब आकांक्षाओं को संतुष्ट करे और पीआरसी की क्षेत्रीय अखंडता की भी रक्षा करे।

शिमला समझौता ऐसा पहला दस्तावेज है जिसमें आंतरिक तिब्बत और बाह्य तिब्बत के बीच विभाजन किया गया है। समझौते के मुताबिक ड्रिचू (यांगत्से नदी) से पश्चिम के इलाके को बाह्य तिब्बत और इससे पूर्व के इलाके को आंतरिक तिब्बत माना गया। इस समझौते में यह सिफारिश की गई कि चीन का बाहरी तिब्बत पर अधिराज तो होगा, लेकिन उस पर संप्रभु अधिकार नहीं होंगे। हालांकि, आंतरिक तिब्बत के मामले में इस समझौते में यह सिफारिश की गई है कि उस पर चीन की प्रभुसत्ता होगी। इसका मतलब यह है कि समझौते में यह सिफारिश की गई है कि बाह्य तिब्बत को पूरी तरह से स्वायत्तता दी जाए। चीन जनवादी गणतंत्र आरंभिक तौर पर इस समझौते में शामिल तो था, लेकिन उसने इस पर दस्तखत नहीं किए। इसकी वजह से ब्रिटिश भारत और तिब्बत को अंतिम समझौते में यह घोषित करना पड़ा कि चीन जनवादी गणतंत्र को समझौते में जो कुछ अधिकार हासिल हुए हैं वह उसने जबरन हासिल किए हैं।

पीआरसी ने शिमला समझौते की यह कहकर आलोचना की कि यह एक साम्राज्यवादी ताकत द्वारा थोपा गया है। फिर भी उसने इस दस्तावेज के आधार पर ही 1951 के सत्रह बिंदुओं वाले समझौते की रूपरेखा तैयार की। आंतरिक तिब्बत में काफी हद तक खम और आमदो के पूर्वी तथा पूर्वोत्तर इलाके हैं जिसे या तो कोई नया प्रांत बनाया गया है, जैसे क्विंघई में आमदो, या उसे मौजूदा चीनी प्रांतों समाहित कर दिया गया है जैसे गांसू, सिचुआन और यून्नान।

बाह्य तिब्बत, जिसमें काफी हद तक मौजूदा तिब्बत स्वायत्तशासी क्षेत्र है, को 17 बिंदुओं वाले समझौते के मुता. बिक वास्तविक स्वायत्तता देने का वायदा किया गया है। 17 बिंदुओं वाले समझौते में कहा गया है, "केंद्रीय प्रशासन तिब्बत के मौजूदा राजनीतिक व्यवस्था में बदलाव नहीं करेगा। केंद्रीय प्रशासन दलाई लामा के स्थापित दर्जे, कार्यों और शक्तियों में भी कोई बदलाव नहीं करेगा।" यह दो वायदे उस 'एक देश दो विधान' की अवधारणा के वास्तविक स्रोत हैं जिसके तहत चीन ने ब्रिटेन से वर्ष 1997 में हांगकांग को हासिल किया था। इस समझौते में तिब्बतियों को यह अधिकार भी दिया गया है कि वे अपने स्तर से सुधार कर सकें। केंद्रीय प्रशासन ने वायदा किया कि वे तिब्बत में सुधारों को नहीं थोपेंगे।

इन दोनों समझौतों से दस्तखत करने वाले पक्षों के बीच अच्छा और स्थायी संबंध बनाने में अगर विफलता हासिल हुई तो इसकी दो बुनियादी वजह हैं। पहली वजह यह है कि तिब्बत को दो टुकड़ों में बांट दिया गया। दूसरी वजह यह है कि 17 बिंदुओं के समझौते में किए गए वायदे पर खरा नहीं उतरा गया। वर्ष 1952 में ही चीनी प्रशासन ने खम और आमदो के पूर्वी एवं पूर्वोत्तर इलाकों में "लोकतांत्रिक सुधार" करने के प्रयास किए। इस कवायद में संपन्न वर्ग के कुछ लोगों की प्रॉपर्टी, खासकर वे जो यूनाइटेड फ्रंट डिपार्टमेंट का सहयोग नहीं कर रहे थे, जब्त कर ली गई। वर्ष 1955–56 में चीन के केंद्रीय प्रशासन ने तिब्बत के उन्हीं इलाकों में "सामाजिक बदलाव" या "समूहीकरण" का प्रयास शुरू किया। इस नीति से लोगों की अपनी जमीन और प्रॉपर्टी पर मालिकाना हक ही खत्म हो गया।

इन समाजवादी नीतियों के तहत सक्रियता से तिब्बत के उच्च स्तरीय लामाओं के आध्यात्मिक सत्ता और स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व को कमजोर किया गया। इसकी वजह से ही स्थानीय तिब्बती सशस्त्र विद्रोह करने को प्रेरित हुए। चीन की जनमुक्ति सेना ने इसका जिस तरह से प्रतिकार किया वह अकल्पनीय था। हजारों लोगों का नरसंहार किया गया और मठों को नष्ट कर दिया गया। इसका नतीजा यह हुआ है कि पूर्वी और पूर्वोत्तर तिब्बत के बहुत से तिब्बती भागकर केंद्रीय तिब्बत में चले गए। इसके साथ ही वे अपने साथ यह संदेश लेकर गए कि इन नीतियों के तहत उन्हें किस तरह की भारी कठिनाइयों से गुजरना पड़ा है। स्वाभाविक है कि इससे केंद्रीय तिब्बत में भय और आशंका का माहौल कायम हो गया। इसी तरह केंद्रीय तिब्बत, जो तब तक 17 बिंदुओं वाले समझौते की वजह से ऐसी नीतियों से बचा हुआ था, वहां चीन सरकार के स्थानीय प्रतिनिधियों ने ऐसे प्रयास बढ़ा दिए कि 17 बिंदुओं वाले समझौते में तिब्बती लोगों को जिन अधिकारों को देने की बात की गई है उसका पालन न किया जाए। इसका नतीजा यह हुआ कि तिब्बती जनता में प्रतिरोध आंदोलन शुरू हो गया जिसकी वजह से आखिरकार 1959 में जनक्रांति हुई।

यदि 17 बिंदुओं वाला समझौता सभी तिब्बती क्षेत्रों पर लागू किया जाता और इसमें जिन स्वायत्त अधिकारों का वायदा किया गया था, उनका सम्मान किया जाता तो 1959 की लोकप्रिय जनक्रांति से बचा जा सकता था और चीन को आज तिब्बत की समस्या में इस तरह से नहीं उलझना पड़ता।

(जम्पा तेनजिन, तिब्बत नीति संस्थान में रिसर्च फेलो हैं)

तिब्बत की अधूरी कहानी को पढ़ना

जिस दिन भारतीय अनुसंधानकर्ताओं की विदेश मंत्रालय या गृह मंत्रालय के पुराने दस्तावेजों तक पहुंच हासिल हो जाएगी, आजादी के कई दशकों बाद तिब्बत के इतिहास को अलग नजरिए से देखा जाएगा, यह मानना है इस पुस्तक के समीक्षक क्लॉड आरपी का।

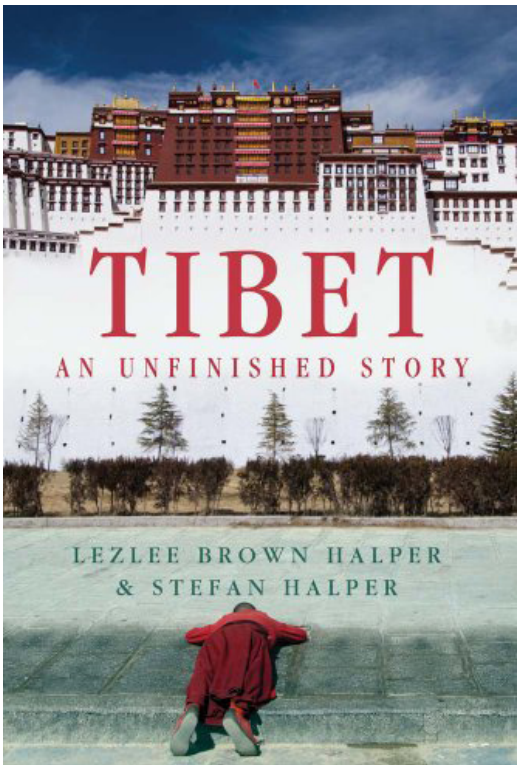

पुस्तक : तिब्बतः ऐन अनफिनिश्ड स्टोरी
लेखक : लेजली हाल्पर और स्टीफन हाल्पर
प्रकाशक : हेशेटे
मूल्य : 599 रुपए
समीक्षक : क्लॉड आरपी

क्या तिब्बत एक अधूरी कहानी है? मुझे यह स्वीकार करना होगा कि जिज्ञासा की वजह से मैंने लेजली ब्राउन हाल्पर और स्टीफन हाल्पर द्वारा लिखी किताब 'तिब्बत–ऐन अनफिनिश्ड स्टोरी' (तिब्बत एक अधूरी कहानी) पढ़ी। चीन के अनुसार तिब्बत का ऐतिहासिक अध्याय लंबे समय पहले ही बंद हो चुका है। मई 1951 में 'तिब्बत की शांतिपूर्ण मुक्ति' के लिए 17 बिंदुओं वाले समझौते पर कुछ तिब्बती प्रतिनिधियों और केंद्रीय चीन सरकार (बीजिंग का कम्युनिस्ट नेतृत्व) के बीच दस्तखत किए गए। इसका अनुच्छेद 1 साफतौर से कहता है, "तिब्बती जनता को चीन जनवादी गणतंत्र की अपनी मातृभूमि में वापस लौटना होगा।"

इसके बाद से ही तिब्बत चीनी 'मातृभूमि' का हिस्सा है। अमेरिका सहित एक भी देश ने इस बुनियादी राजनीतिक तथ्य पर आपत्ति दर्ज नहीं की। पुस्तक का शीर्षक देखकर मुझे यह जिज्ञासा हुई कि ब्रिटेन के कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के दो प्रख्यात विद्वान आखिर किस वजह से तिब्बत के मसले को बंद अध्याय बता रहे हैं। हालांकि, इस शीर्षक की तार्किकता समझने के लिए पाठकों को अंतिम पैराग्राफ तक इंतजार करना होगा। इसे पढ़ने के बाद इस बात में कोई संदेह नहीं किया जा सकता कि लेखकों ने काफी रिसर्च किया है। एक रोचक विशेषता यह है कि लेखकों ने 'तिब्बत के मिथक' और 'असल राजनीति' के बीच तुलना की है। वे लिखते हैं: "मिथकीय तिब्बत लंबे समय से पश्चिमी दुनिया के लिए कहानी का एकीकृत हिस्सा रहा है।"

दुर्भाग्य से जब बड़ा खेल चल रहा था, "ल्हासा बड़ी महाशक्तियों की राजनीति और चीनी राष्ट्रवाद की छलकपट वाली लहर के बीच सौदेबाजी करने में नाकाम रहा। " तिब्बत का मिथक एक तथ्य था। तिब्बत पर हमले के कुछ हफ्तों बाद ही पश्चिम में तिब्बत के बारे में आश्चर्यजनक विवरण प्रसारित हुए। 3 नवंबर, 1950 को कॉम्बैट में छपे एक लेख में यह बताया गया कि तिब्बत में हमला कोई साधारण हमला नहीं था, इसके पीछे कुछ और था, एक आंतरिक अभिप्राय।

इस हमले के पहले के धार्मिक माहौल का संक्षिप्त विवरण देते हुए काम्बैट ने बताया है कि तिब्बत, "तत्वतः प्रार्थना, दिव्यता और आंतरिक जीवन से अगाध प्रेम को समर्पित था।" रिपोर्टर ने अटलांटिस सभ्यता के अवशेष के बारे में अपने गोपनीय सिद्धांत को प्रतिपादित करते हुए कहा है, "अटलांटिस परंपरा में तिब्बत का बहुत खास स्थान है। इस परंपरा के मुताबिक अत्यंत बुद्धिमान और शक्तिशाली मानवता की मातृभूमि अटलांटिस जोश के साथ सहभागिता के रहस्यों को समेटे हुए है।"

इसके एक दिन बाद ली जर्नल डी जेनेवे ने ज्यादा दो

टूक बात कीः "लामावादी कुलीन–तंत्र के दौर में शायद एक उत्तराधिकारी होगा जो हमलावर द्वारा थोपा गया कोई विदेशी संगठन होगा। हालांकि, एक ऐसी आध्यात्मिक सत्ता को नष्ट करना इतना आसान नहीं होगा जो सनातन हिमालय के बर्फ के किले में शताब्दियों तक सुरक्षित रहा है।"

इससे शायद इस बात को समझा जा सकता है कि आखिर तिब्बत आज भी एक 'अधूरी कहानी' है और अपनी 'मुक्ति' के 60 साल से ज्यादा हो जाने बावजूद तिब्बती जनता अपने 'मुक्तिदाताओं' का प्रतिरोध कर रही है। इस पुस्तक को लिखने के लिए लेखकों ने कई ऐतिहासिक दस्तावेजों का सहारा लिया है, खासकर ब्रिटेन और अमेरिका के गोपनीय सूची से हटाए गए अभिलेखों का। लेकिन सबसे बड़ी लाचारी की बात यह रही है कि उन्हें चीनी, तिब्बती या भारतीय पक्ष (सिवाय जवाहरलाल नेहरू की चयनित रचनाओं से मिले कुछ जानकारियों के) से मदद नहीं मिली है। इसका नतीजा यह रहा कि तिब्बत के इतिहास का अच्छी तरह से दस्तावेजी संस्करण सिर्फ पश्चिमी नजरिए का हासिल किया जा सका है। सीआइए के गोपनीय अभियानों या अमेरिका के विदेश मंत्रालय द्वारा दलाई लामा को सहयोग मिलने की कहानियां पूरी किताब में भरी पड़ी हैं। भारत दस्तावेजों के डीक्लासिफिकेशन यानि गोपनीयता सूची से हटाने में (या उसमें रुचि लेने में) यदि पीछे है तो इसके लिए लेखकों को दोष नहीं दिया जा सकता। हाल में भारत के विदेश मंत्रालय ने करीब 60,000 फाइलों को गोपनीयता सूची से बाहर किया है और उन्हें नेशनल आर्काइव्स ऑफ इंडिया को भेज दिया है। बताया जाता है कि एक बाबू इन फाइलों को रिसर्च के योग्य वाले कॉलम में दर्ज करना भूल गया था जिसकी वजह से अभी तक यह गोपनीय मान लिए गए थे। इसके अलावा आज़ादी के बाद भारत में इस मामले में कुछ खास नहीं किया है।

अमेरिका में स्थिति बिल्कुल अलग है। कुछ दिनों पहले ही अमेरिकी नेशनल आर्काइव्स ने अपने 2014–2016 के ओपन गवर्नमेंट प्लान (फाइलों को गोपनीय सूची से बाहर करने) का उल्लेखनीय विवरण पेश किया है। सूचना की आज़ादी पर काम करने वाले एक निजी संगठन द नेशनल सिक्योरिटी आर्काइव ने लिखा हैः "सूचना की ताकत, खुले स्रोत और क्राउड सोर्सिंग के क्षेत्र में आर्काइव प्रयास काबिलेतारीफ है जिसने अपने कीमती संसाधनों को ज्यादा से ज्यादा संभव लोगों तक पहुंचाया है।" इस मामले में इस बात में कोई दोराय नहीं कि भारत को अमेरिका से कुछ सीख लेनी चाहिए।

अपनी विवादास्पद पुस्तक 'दि एक्सीडेंटल प्राइम मिनिस्टर' में संजय बारू लिखते हैं कि मनमोहन सिंह हमेशा कुछ जानने को उत्सुक रहते थेः "उनके लिए चीन अब भी एक पहेली बना हुआ था और वह उत्सुकता से ऐसे लोगों से मिलना पसंद करते थे जिन्हें इसके बारे में जानकारी हो। उन्होंने चीन के बारे में जानकारी के लिए हार्वर्ड के प्रोफेसर रॉड्रिक मैकफैरक्युहार को आमंत्रित किया।'' लेकिन सवाल उठता है कि चाहे कितना ही असाधारण जानकारी रखने वाला क्यों न हो, भारत के प्रधानमंत्री को ऐसे मसले पर किसी अमेरिकी विद्वान से जानकारी लेने की जरूरत क्यों पड़े?

इसकी एक वजह यह हो सकती है कि भारतीय विद्वानों की अपने देश के अभिलेखों तक ही पहुंच नहीं हो पाती। जिस दिन भारतीय अनुसंधानकर्ताओं को विदेश मंत्रालय या गृह मंत्रालय के अभिलेखों तक पहुंच हासिल होगी (जो कि कानून के मुताबिक अनिवार्य है), तिब्बत के इतिहास को आज़ादी के कई दशकों बाद एक अलग कोण से देखा जाएगा।

दुर्भाग्य से इतिहास का अमेरिका या पश्चिमी नजरिया अब भी हावी है, हालांकि इससे एक और सवाल खड़ा होता हैः क्या 1960 के दशक में या 1970 के दशक की शुरुआत में सीआइए का अभियान, जिसका वर्णन पुस्तक में है, तिब्बती आंदोलन का कुछ भला कर सका था? मेरी राय तो नहीं की ही है।

इसके बावजूद यह अनफिनिश्ड स्टोरी पढ़ना फायदेमंद है क्योंकि यह पिछली घटनाओं को वृहद भू–राजनीतिक पहलू से देखने की कोशिश करता है। इस बात का एहसास होता है कि आखिर में 'राष्ट्रीय हित' ही हावी रहते हैं, जब 1970 के दशक में किसिंजर–निक्सन जोड़ी ने तिब्बती आंदोलन का साथ छोड़ दिया तब यह अमेरिका के व्यापक हित में था कि माओ के चीन से संवाद बढ़ाया जाए (और सोवियत संघ की ताकत से 'संतुलन साधने' के लिए)।

जैसा कि 13वें दलाई लामा ने एक बार कहा थाः "बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है।" यह वर्ष 1910 की बात है जब वह ग्रेट ब्रिटेन और तिब्बत का हवाला दे रहे थे। पुस्तक के शीर्षक के बारे में लेखकद्वय ने अंत में कहा है, "हमारी टिप्पणी यह है कि यदि तिब्बत की समस्या को सही तरीके से नहीं समझा गया तो वहां की स्थिति नहीं सुधर सकती और ऐसा हो नहीं रहा है।" सच है, लेकिन कहानी को 'पूर्ण' करने के लिए कहें तो निश्चित रूप से अमेरिकी विदेश मंत्रालय या व्हाइट हाउस की नीति बदलने से बहुत मदद नहीं मिल सकती। अमेरिका से जो कुछ भी आता है चीनी उसके लिए प्रतिकूल रवैया ही रखते हैं, इसलिए यह पुस्तक पढ़कर उन्हें मिर्ची ही लग सकती है।

कमी यह है कि लेखकों ने दलाई लामा के मध्यम मार्ग नीति का ज्यादा विस्तार से विश्लेषण नहीं किया है। हालांकि, फिलहाल चीन ने इसे खारिज कर दिया है, लेकिन यह समस्या के समाधान का एकमात्र ऐसा रास्ता है जिससे तिब्बती और चीन सरकार दोनों संतुष्ट हो सकते हैं।

दोनों पक्षों के बीच फिर से संपर्क कायम करने में भारत की भूमिका हो सकती है, लेकिन उसे यह विवेकपूर्ण और संवेदनशील तरीके से करना होगा।

देशज लोगों के अधिकारों के मामले में चीन और संयुक्त राष्ट्र की घोषणा और तिब्बत का मसला

ekbdy MfoM
(27 मई 2014)

संप्रभुता को अपनी ढाल बनाते हुए चीन जनवादी गणतंत्र (पीआरसी) ने अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार अनुपालन से एक तरह से छूट देने की मांग की है। हालांकि, उसने कई मानवाधिकार समझौतों पर दस्तखत किए हैं, लेकिन देश केंद्रित उसके रवैए से इन सभी को लागू करने से बचने का प्रयास किया है। यह कोशिश अब ज्यादा निरंकुश दिख रही है, खासकर इस बात पर अगर गौर करें कि उसने देशज लोगों के अधिकारों के बारे में किसी तरह की बाध्यता को मानने से इनकार कर दिया है।

पीआरसी ने वास्तव में देशज लोगों के अधिकारों पर 2007 के संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र (यूएनडीआरआइपी) के समर्थन में वोट किया था। इसके तुरंत बाद ही उसने घोषणापत्र के तहत किसी तरह की वचनबद्धता से बचते हुए यह घोषित कर दिया कि चीन में कोई भी देशज लोग नहीं हैं। उसने दावा किया उसके 5,000 साल के एकता और सौहार्द के इतिहास में 55 प्राधिकृत राष्ट्रीय अल्पसंख्यक अपनी जमीन पर काफी शांति से रह रहे हैं। पर सच तो यह है कि उसके रक्तरंजित इतिहास और उसकी तीन सबसे प्रमुख राष्ट्रीयताओं–तिब्बती, उइगर और मंगोल– द्वारा हाल के विरोध प्रदर्शन से उसके ऐसे दावे मिथ्या साबित होते हैं। हालांकि, अंतरराष्ट्रीय समुदाय शायद ही कभी उसके इस दावे को चुनौती देता हो।

पीआरसी के दावे को परे रखें तो भी चीन ने अपने देशज लोगों, जिसे उसने औपचारिक तौर पर राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों के रूप में चिह्नित किया है, के साथ जो कुछ किया है उस पर सवाल खड़े किए जा सकते हैं। अपना ध्यान तिब्बत पर सीमित करते हुए इस शोधपत्र में चीन के देशज लोगों के प्रति वचनबद्धता का आकलन किया जाएगा और इसका मूल्यांकन किया जाएगा कि सामान्य तौर पर उसने प्रासंगिक अंतरराष्ट्रीय मानक का कितना अनुपालन किया है। यह विश्लेषण इस बात को मानता है कि सिर्फ संयुक्त राष्ट्र की किसी घोषणा को ही कठोर अंतरराष्ट्रीय कानून नहीं माना जाता और कुछ परिस्थितियों में यह एक रिवाज जैसा अंतरराष्ट्रीय कानून ही होता है।

न्यूनतम रूप में देखें तो मौजूदा प्रथागत अंतरराष्ट्रीय कानून को दर्शाने वाले यूएनडीआरआइपी से एक दमदार दिशा–निर्देश तो हासिल होता ही है जिसके समर्थन में मतदान कर चीन ने उसे प्रभावी तरीके से अपनाया है।

Lk;Dr jk"V ?kk"k.kki= vk;j phu

यूएनडीआरआइपी 'देशज लोगों' की कोई विशिष्ट परिभाषा नहीं देता, लेकिन यह इस बात को जरूर तय करता है कि उनकी दुनिया भर में मौजूदगी है। वर्ष 1986 के संयुक्त राष्ट्र के एक अध्ययन से एक परिभाषा की पेशकश की गई है जिसके मुताबिक उन समुदायों को भी शामिल करने की बात कही गई है जो "उस पूर्व हमले या पूर्व औपनिवेशिक समाज के साथ ऐतिहासिक निरंतरता रखते हों जो उनके क्षेत्र में विकसित हुआ हो और वहां मौजूद समय में रह रहे समाज के अन्य वर्गों से अपने को अलग मानते हों (संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं सामाजिक परिषद 1986) ।" विशिष्ट आत्म–पहचान पर जोर इस मामले में साफतौर से लागू होता है। यहां तक कि चीन के अपने हिसाब से देखें तो भी वर्ष 2009 में उसके द्वारा तिब्बत पर जारी श्वेतपत्र में, तिब्बती जनता को साफतौर से एक अलग संस्कृति, भाषा, इतिहास और संविधान रखने वाला माना गया है जो तिब्बती इलाके में व्यापक बहुमत रखते हैं। परिभाषा में जिस हमले की बात की गई है, तिब्बत में 1950–51 में चीनी हमला भी साफतौर से इसी तरह का माना जाएगा, जिसकी वजह से दलाई लामा के साथ सत्रह बिंदुओं वाला एक समझौता हुआ जिसमें तिब्बतियों से यह वादा किया गया कि चीनी संप्रभुता स्वीकार कर लेने के बदले में उनके परंपरागत सरकार के अंतर्गत सभी अधिकार बनाए रखे जाएंगे। यह समझौता साफतौर से एकतरफा समझौता था जिसे करने के लिए दलाई लामा मजबूर थे और यह एक और विशेषता है जो दुनिया भर के देशज समझौतों में देखी गई है। यूएनडीआरआइपी ने ऐसे कई मानकों की पहचान की है जिनको उपयुक्त तरीके से तिब्बत के मौजूदा हालात के आकलन के लिए लागू किया जा सकता है। इसके प्रारंभिक अनुच्छेदों में इस बात पर जोर है कि देशज लोगों की भूमि को सैन्यमुक्त किया जाए, देशज लोगों को देशों के साथ अपने रिश्ते निर्धारित करने की आजादी हो, संधि, समझौते और देशों के साथ रचनात्मक तालमेल अंतरराष्ट्रीय चिंता का विषय हों। बुनियादी महत्व इस बात पर है कि सभी लोगों को आत्मनिर्धारण का अधिकार हो, इस तरह से वे अपने राजनीतिक दर्जे को मुक्त तरीके से निर्धारित कर सकें और अपने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास कार्य मुक्त रूप से आगे बढ़ा सकें और अंतरराष्ट्रीय कानून के अनुरूप उनके आत्मनिर्धारण के अधिकार को नकारा नहीं जा सकता।

इस बात को व्यापक तौर पर स्वीकार किया गया कि तिब्बत का भारी सैन्यीकरण हो चुका है और तिब्बती जनता को कभी भी चीन के साथ अपने जुड़ाव का आज़ादी से निर्धारण का अधिकार नहीं दिया गया। इन मसलों पर बातचीत के लिए निर्वासित तिब्बती नेतृत्व के प्रयासों पर लगातार झिड़की ही मिली है। इन मसलों पर अंतरराष्ट्रीय चिंता कई गैर सरकारी संगठनों की तथा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय रिपोर्ट में दिखती है।

संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र के मुख्य पाठ में देशज लोगों के आत्मनिर्धारिण के अधिकार की गारंटी दी गई है, स्वायत्तता का अधिकार या आंतरिक और स्थानीय मामलों में स्वशासन का अधिकार, अपने आध्यात्मिक एवं धार्मिक परंपराओं, रीति–रिवाजों, समारोह आदि को प्रदर्शित करने, उसके पालन करने, विकास करने और शिक्षण का अधिकार जिसमें धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थलों पर लोगों के निजी तौर पर जाने का अधिकार और रस्मी वस्तुओं पर नियंत्रण का अधिकार, ऐसे मामलों की निर्णय प्रक्रिया में शामिल होने का अधिकार जो उनके अधिकारों को प्रभावित करते हों और वह भी अपनी प्रक्रिया के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा, राज्य के किसी विधायी या प्रशासनिक प्रक्रिया को लागू करने से पहले उसमें परामर्श देने और अपने प्रतिनिधि संस्थाओं के द्वारा पूर्व रजामंदी देने का अधिकार तथा समझौतों, संधियों एवं अन्य रचनात्मक बंदोबस्त को मान्यता देने, अनुपालन और प्रवर्तन का अधिकार। साथ ही, उन्हें विभिन्न तरह के मानवाधिकार समझौतों और वचनों के द्वारा अधिकारों की रक्षा की गारंटी मिली हुई है। चीन ने देश भर में ऊपर से नीचे तक जो अधिनायकवादी शासन थोपा है, उसमें तिब्बतियों के संवाद के प्रयासों को खारिज ही किया जाता है और बुनियादी मानवाधिकारों की रक्षा के उसके कमजोर कदमों से साफतौर से

इन मानकों का पूरा करने में विफलता नजर आ जाती है। इसके अगली धाराओं पर गहरी नजर डालने से पता चलता है कि चीन आखिर किस तरह से इन मानकों से भटका हुआ है और 17 बिंदुओं वाले समझौते में पहले अपने खुद दिए गए वायदों को भी पूरा नहीं कर पा रहा।

ihvkjlh d 'kklu d rgr frCcfr;k dk ßLok;RrrkÞ

चीन ने तिब्बत पर कब्जा करने के बाद 1950–51 में तिब्बत के ऊपर जो सत्रह बिंदुओं वाला समझौता थोपा था, वह वास्तव में बाद की किसी भी नीति से ज्यादा यूएनडीआरआइपी के मानकों के करीब है। इस समझौते में तिब्बत के विशेष दर्जे को स्वीकार किया गया है, स्वायत्तता देने का वायदा किया गया है और तिब्बत के पारंपरिक स्वशासन की व्यवस्था को आगे बढ़ाने की बात कही गई है। लेकिन 1950 के दशक की क्रांति के उत्साह में चीनी अधिकारियों ने अपनी प्रतिबद्धताओं के प्रति बहुत कम सम्मान दिखाया क्योंकि वे चीनी कम्युनिस्ट पार्टी (सीसीपी) के तहत "लोकतांत्रिक सुधार" थोपना चाहते थे जो उन्हें लगता था कि चीनी जनता तेजी से अपना लेगी। इस तरह के हमलावर रवैये से तंग लोगों में जनक्रांति पैदा हुई और दलाई लामा मार्च 1959 में भागकर भारत चले गए। वहां उन्होंने निर्वासन में एक सरकार की स्थापना की जो कि अभी तक चल रही है। दलाई लामा यदि तिब्बत में रह जाते तो ऐसा लगता है कि तिब्बती जनता और पूरी दुनिया आखिरकार दुनिया के सबसे बड़े आध्यात्मिक नेताओं में से एक से वंचित हो जाती।

दलाई लामा के निर्वासन में चले जाने के बाद पीआरसी के नेता सत्रह बिंदुओं के समझौते के तहत किए अपने वायदों से मुकर गए और उन्होंने राष्ट्रीय क्षेत्रीय स्वायत्तता के मौजूदा कानून (एलआरएनए) के तहत वहां तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्र की स्थापना की। इसमें साफतौर से स्वायत्तता के किसी इरादे से ज्यादा केंद्रीय नियंत्रण कायम है। करीब आधे परंपरागत तिब्बती इलाकों को आसपास के प्रांतों के 12 कम स्वायत्त इलाकों में बांट दिया गया। इसे तिब्बती बांटों और राज करो की नीति का हिस्सा मानते हैं। बड़े पैमाने पर सेना की मौजूदगी, खासकर टीएआर में, से ऐसा लगता है कि चीन तिब्बत को देशज अधिकारों से ज्यादा राष्ट्रीय सुरक्षा की तरह देखता है। एलआरएनए सभी 55 निर्धारित अल्पसंख्यकों पर लागू होता है, लेकिन इसके प्रावधानों के तहत जिस तरह के सीधे सख्त नियंत्रण का दस्तूर बन गया है वह लगता है कि तिब्बत और पड़ोसी सीक्यांग के उइगर इलाके को लक्ष्य बनाकर किया गया है। किसी शंकालु दिमाग में यह जिज्ञासा हो सकती है कि इतने ज्यादा राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों का दर्जा देने में दिखाई गई उदारता कहीं ऐसे अर्द्ध–देशज दर्जे को दबाने के लिए तो नहीं है।

वर्ष 1982 के चीन के संविधान मे, जिसे चीन के उदारीकरण के दौर में सांस्कृतिक क्रांति के बाद पारित किया गया था, ऐसा लगता है कि स्थानीय स्वायत्तता देने की पेशकश की गई है. अनुच्छेद 4 में कहा गया है, "क्षेत्रीय स्वायत्तता उन इलाकों को दी जाएगी जहां अल्पसंख्यक राष्ट्रीयता के लोग संकेंद्रित समुदाय की तरह रहते हों (चीन 1982) । जैसा कि एलआरएनए में भी कहा गया है, ऐसी स्वायत्तता में "स्वायत्तता का उपभोग (जिझी तियाओली) करने के लिए नियम–कायदे बनाने और राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विशेषताओं के आधार पर अन्य अलग नियम–कायदे बनाने" का अधिकार होगा। "स्वायत्तता के उपभोग पर नियम–कायदे" प्रभावी रूप से उप–संविधान या बुनियादी कानून जैसे हैं और ऐसे एक कानून को हर क्षेत्र में लागू किया जाना चाहिए। एक कठिनाई यह है कि स्वायत्त क्षेत्रों में ऐसे सभी कानूनों को लागू करने के लिए उच्च स्तरीय मंजूरी की जरूरत पड़ती है। ऐसी मंजूरी को आमतौर पर सरकार के अगले उच्च प्रशासनिक स्तर से आना चाहिएः स्वायत्त क्षेत्रों के लिए केंद्र सरकार और स्वायत्त प्रशासनिक क्षेत्रों एवं काउंटियों के लिए प्रांतीय सरकार। चीन के पांच स्वायत्तशासी क्षेत्रों में से किसी को भी– चाहे वह तिब्बत, सीक्यांग, आंतरिक मंगोलिया, गुआंक्सी हो या निन्गशिया–स्वायत्तता के उपभोग के ऐसे बुनियादी नियमों के लिए मंजूरी हासिल नहीं हुई है।

टीएआर में बुनियादी नियम बनाने के प्रयास के तहत 15 प्रारूप तैयार किए गए और आखिरकार उसे राज्य परिषद (घई और वुडमैन 2009) को भेजे बिना ही अधर में छोड़ दिया गया। स्वायत्तशासी प्रशासनिक क्षेत्रों और काउंटीज को बुनियादी स्वायत्तता कानून बनाने के लिए प्रांतीय सरकारों से मंजूरी हासिल हुई है, लेकिन इनमें साधारणतया एलआरएनए के विषयवस्तु का ही अनुसरण किया गया है जिसमें स्थानीय स्वायत्तता का साक्ष्य कम ही दिखता है। स्वायत्त क्षेत्रों और अन्य इलाकों के लिए कई "अलग–अलग नियम–कायदे" लागू किए गए हैं।

इससे जो तस्वीर उभरती है वह एक कठोर केंद्रीय नियंत्रण की ही है। स्वायत्त कानूनों को लागू करने के लिए आधिकारिक मंजूरी की जरूरतों के अलावा यह नियंत्रण कम्युनिस्ट पार्टी के माध्यम से चलाई जाने वाली सबसे महत्वपूर्ण कवायद है जो हर स्तर पर दिखती है।

कम्युनिस्ट पार्टी की समितियों को विधायी प्रक्रिया के हर स्तर पर प्रारूप विधायक को मंजूर करना होता है। ऐसे अल्पसंख्यक स्वायत्तशासी क्षेत्रों में राजनीतिक विकल्प के इस सचेत नियंत्रण को बढ़ावा देने वाले दूसरे कारकों में स्वायत्तशासी सरकार के सभी स्तरों पर राष्ट्रीय राजनीतिक ढांचे का अनुसरण करना शामिल है, जैसे पीपल्स कांग्रेस और सीसीपी निगरानी। तथ्य तो यह है इन इलाकों की कम्युनिस्ट पार्टी के शीर्ष पदों पर हमेशा चीनी कार्यकर्ताओं को ही रखा गया और आखिरकार एक कम्युनिस्ट विचार हावी हो गया जो यह दावा करता था कि उस इलाके को चीन ने "मुक्त" कराया है और इस तरह से ऐसे इलाकों की देशज वास्तविकता को प्रभावी तरीके से नकार दिया गया। यह तिब्बती इलाके में दशकों के चीनी प्रभुत्व और दमन का नतीजा था। राष्ट्रीय राजनीतिक अराजकता और दमन के दौर में, जैसे सांस्कृतिक क्रांति, विनाश का स्तर काफी प्रत्यक्ष हो गया जिससे तिब्बती असंतोष काफी बढ़ गया। हालांकि, हाल के वर्षों में चीनी नीतियों से आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिला है, लेकिन यह कदम कोई तिब्बतियों से कृतज्ञता हासिल करने के लिए नहीं उठाए गए हैं। तिब्बतियों ने इन नीतियों को चीन की अपनी सेवा की नीतियों की तरह ही समझा है ताकि संसाधनों के दोहन को सुविधाजनक बनाया जाए, तिब्बती इलाकों में चीनी आव्रजन को खोला जाए और विरोध को दबाया जाए–इन सभी से चीनी हित सधता है।

चीनी दमन के प्रयासों में गहरी निगरानी और तिब्बती मठों में "पुनर्शिक्षा" और सुरक्षा बलों की भारी तैनाती शामिल है जिससे असंतोष और बढ़ा ही है। तिब्बतियों का यह विरोध विभिन्न तरह के विरोध प्रदर्शन, दंगों और सबसे हाल की बात करें तो 120 से ज्यादा आत्मदाहों से साफ दिखता है। सत्रह बिंदुओं वाले समझौते में किए मूल वायदों या मौजूदा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक कानूनों के पालन से बचने का कोई भी बहाना अब नहीं चलेगा। मौजूदा नीतियां यूएनडीआरआइपी में किए गए वायदों से काफी पीछे हैं।

frCcrh Kkiu vkj okrk dh foQyrk

वर्ष 2008 में प्रदर्शन और दंगे खासकर चीन के लिए बहुत बेवक्त हुए क्योंकि उन दिनों वह 2008 के बीजिंग ओलंपिक की तैयारियों में लगा हुआ था। नुकसान की भरपाई के प्रयास के तहत मई, जून और अक्टूबर, 2008 में तीन महत्वपूर्ण बैठकें बुलाई गईं। वर्षों से दलाई लामा ने इस बात की वकालत की थी कि वह तिब्बत में वास्तविक स्वायत्तता हासिल करने के लिए एक 'मध्यम मार्ग नीति' का दामन थामे हुए हैं, ऐसी नीति जो उनके मुताबिक चीन की संविधान के दायरे में है। जुलाई 2008 में होने वाला बीजिंग ओलंपिक करीब होने की वजह से चीनी अधिकारियों ने दलाई लामा के प्रतिनिधियों से कहा कि वह इस बारे में एक ज्ञापन दें कि आखिर किस तरह से मध्यम मार्ग नीति चीन जनवादी गणतंत्र (पीआरसी)

के संविधान के दायरे में है। इसके बाद उसी साल अक्टूबर की बैठक में तिब्बती जनता के लिए वास्तविक स्वायत्तता का तिब्बती ज्ञापन पेश किया गया, जो कि बीजिंग ओलंपिक खत्म होने के तत्काल बाद बुलाई गई थी। तिब्बती ज्ञापन में स्वायत्ता के लिए उन 11 उम्मीद के क्षेत्रों को रेखांकित किया गया था जो काफी हद तक चीन के संविधान में वर्णित स्वायत्तता के क्षेत्रों की तरह ही थेः भाषा, संस्कृति, धर्म, शिक्षा, पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक संसाधनों का इस्तेमाल, आर्थिक विकास एवं व्यापार, जन स्वास्थ्य, आंतरिक जन सुरक्षा, जनसंख्या स्थानांतरण और दूसरे देशों के साथ सांस्कृतिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक आदान–प्रदान। जनसंख्या आव्रजन और वाणिज्यिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में बाहरी संबंधों पर स्थानीय नियंत्रण के लिहाज से इस ज्ञापन में ऐसा लगता है कि पीआरसी के संविधान के अनुच्छेद 31 के तहत हांगकांग और मकाऊ को दी गई ज्यादा स्वायत्तता जैसी चाहत है। ज्ञापन में यह भी मांग की गई थी कि मौजूदा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक कानून के तहत जरूरी केंद्र सरकार की मंजूरी लेने की प्रक्रिया को खत्म किया जाए। अंततः ज्ञापन में यह मांग की गई है कि एक–दूसरे से जुड़े सभी तिब्बती स्वायत्तशासी क्षेत्रों को मिलाकर एक किया जाए। इन सभी इलाकों को यूएनडीआरआइपी के दिशा–निर्देशों में आसानी से पाया जा सकता है। तिब्बती प्रस्तावों और ज्ञापन पर आधिकारिक चीनी प्रतिक्रिया से यह संकेत मिलता है कि पीआरसी देशज लोगों के स्वतंत्र तरीके से चुने हुए प्रतिनिधियों से वार्ता के लिए यूएनडीआरआइपी की शर्तों को खारिज करता है। पीआरसी के अधिकारियों ने जानबूझ कर इन वार्ताओं को नीचा दिखाया है जिससे यह संकेत मिले कि चीन–तिब्बत "संपर्क और संवाद दलाई लामा के व्यक्तिगत भविष्य के बारे में है" न कि 'चीन–तिब्बत वार्ता' या 'हान चीनी या तिब्बती जनता के बीच वार्ता है। पीआरसी के अधिकारियों का उद्देश्य साफतौर पर नुकसान की भरपाई करना था, इसलिए उसने चीन को बांटने की गतिविधियों को रोकने के उद्देश्य से तीन चीजों को 'रोकने" पर जोर दिया। ये तीन चीजें हैंः चीन को बांटने वाली गतिविधि रोकें, हिंसा की साजिश रचना एवं उसे बढ़ावा देना रोकें और बीजिंग ओलंपिक खेलों का काम बिगाड़ना बंद करें।"

इसे बाद में नया स्वरूप देकर "चार चीजों को समर्थन न करने" की बात कहीः आने वाले बीजिंग ओलंपिक खेलों को बाधित करने वाली गतिविधियों का समर्थन नहीं करेंगे, हिंसक आपराधिक गतिविधियों को हवा देने वाली साजिश का समर्थन नहीं करेंगे, 'तिब्बती युवा कांग्रस' की हिंसक आतंकवादी गतिविधियों का समर्थन नहीं करेंगे और उस पर ठोस तरीके से अंकुश लगाएंगे और 'तिब्बत की आज़ादी' एवं इस क्षेत्र को देश से अलग करने की चाहत रखने वाले किसी भी तर्क एवं गतिविधि का समर्थन नहीं करेंगे।"

चीनी अधिकारियों ने उपेक्षापूर्वक तिब्बती जनता के प्रतिनिधित्व करने के दलाई लामा की विश्वसनीयता को चुनौती दी है और इस बात पर जोर दिया है कि चाहें तो एक 'सामान्य व्यक्ति' की तरह केंद्र सरकार से बातचीत कर सकते हैं। यही नहीं उन्होंने दलाई लामा के खिलाफ व्यक्तिगत हमला करते हुए उन्हें "भिक्षु के कपड़ों में भेड़िया बताया"। तिब्बती ज्ञापन पर प्रतिक्रिया देते हुए एक राज्य परिषद ने तिब्बतियों के "वाजिब स्वायत्तता" के इरादे को उसी तरह का "उच्च स्तर की स्वायत्तता" की इच्छा बताया जैसी कि हांगकांग को दी गई है। तिब्बतियों पर यह आरोप लगाया गया कि वे "आधी आज़ादी" या "छुपे तौर पर आज़ादी" चाह रहे हैं, हालांकि, इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि इसी भाषा का इस्तेमाल जब हांगकांग में किया गया है तो वहां इसे सिर्फ स्वायत्तता क्यों समझा जाता है। राज्य परिषद ने इसके अलावा निर्वासित तिब्बतियों पर यह भी आरोप लगाया कि निर्वासित तिब्बतियों की "लोकतंत्र के आंदोलनकारियों, फालुनगांग तत्वों और पूर्वी तुर्किस्तान के आतंकवादियों" से सांठगांठ है। तिब्बत में आव्रजन पर नियंत्रण में तिब्बती ज्ञापन में दिए प्रस्ताव को "नस्लीय सफाई" जैसा बताया गया। राज्य परिषद के संबोधन में घोषणा की गई है, "हम कभी भी तथाकथित 'तिब्बत मसले' पर चर्चा नहीं करेंगे और 'इस मामले में कभी भी रियायत नहीं देंगे"। यह भाषा दिखाती है कि बुनियादी देश अधिकारों और उससे जुड़े तिब्बतियों के लिए स्वायत्तता को पूरी तरह खारिज किया गया है।

निष्कर्ष

तिब्बत नीति के लिए जिम्मेदार अधिकारी, खासकर पीआरसी के यूनाइटेड वर्क्स डिपार्टमेंट के, तिब्बत को मुख्यतः एक सुरक्षा की समस्या के तौर पर देख रहे हैं। उनकी राय ऐतिहासिक औपनिवेशिक नीतियों जैसी ही है, इस भावना के साथ कि वे इस इलाके में बेहतरीन संस्कृति और आर्थिक विकास लेकर आए हैं। अक्सर यह सुना जा सकता है कि चीनी इस बात पर चिंता जताते हैं कि तिब्बती इलाके में चीन के उदारतापूर्ण निवेश के प्रति तिब्बती कृतघ्नता दिखा रहे हैं। इस दृष्टि को जब तिब्बत पर ऐतिहासिक हक के चीनी दावे से जोड़ दिया जाए तो तिब्बती चुनौती के प्रति चीनी गुस्से में समझौते की कोई गुंजाइश नहीं दिखती। दलाई लामा समझौता करने को तैयार हैं, लेकिन उन्होंने चीन–तिब्बत इतिहास के बारे में चीनी व्याख्या के आगे झुकने से इनकार किया है। चीनी अधिकारी यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि ऐसे इनकार की वजह से पूर्ण वैधता के किसी भी निपटारे से वंचित रह जाएंगे।

चीनी कब्जे की कठिन वास्तविकता से जूझते हुए दलाई लामा ने, जैसा कि तिब्बती ज्ञापन में झलकता है, चीनी संप्रभुता के तहत "वास्तविक स्वायत्तता" स्वीकार करने की पेशकश की। लेकिन उनके प्रतिनिधियों के प्रति चीनियों के अविश्वास, ज्ञापन और अन्य कहीं भी, की वजह से इसमें गतिरोध बना ही रहा। दलाई लामा ने लगातार यह प्रयास जारी रखा कि अपनी मध्यम मार्ग नीति के तहत किसी समझौते तक पहुंच जाएं, लेकिन इस मामले में कोई बड़ी सफलता हासिल करने के बारे में संदेह बना रहा। तिब्बती समुदाय में उनको भारी समर्थन मिलता रहा है, निर्वासित तिब्बतियों ने दलाई लामा के प्रयासों का काफी उदारता से समर्थन किया है, लेकिन निर्वासित तिब्बती समुदाय में अब किसी सफलता को लेकर संदेह बढ़ रहा है। इस बारे में लोगों को बहुत कम भरोसा है कि चीनियों को समझौता करने में कोई दिलचस्पी है, धारणा यह है कि वे बस समय काट रहे हैं, दलाई लामा के न रहने का इंतजार कर रहे हैं जिसके बाद उन्हें लगता है कि निर्वासित तिब्बतियों का आंदोलन बिखर जाएगा।

सवाल उठता है कि क्या चीनी दलाई लामा द्वारा दिए जाने वाला मौका गंवा रहे हैं, उनके द्वारा व्यक्तिगत रूप से पेशकश और तिब्बती ज्ञापन के द्वारा जिसे किसी समझौते पर पहुंचने के लिए बातचीत का दस्तावेज समझा जा सकता है? क्या उन्हें दलाई लामा की इस क्षमता का फायदा नहीं उठाना चाहिए कि अंतरराष्ट्रीय मानक और तिब्बती ज्ञापन के अनुरूप किसी समझौते पर पहुंचने के लिए उन्हें तिब्बती समुदाय का व्यापक समर्थन हासिल हो सकता है? जब तक चीन की नीतियां अंतरराष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नहीं होंगी, जैसा यूएनडीआरआइपी में दिखता है, तो तिब्बत और अन्य महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों के बारे में उनके दावे पर दुनिया संदेह ही करती रहेगी, भले ही अपनी ताकत के बल पर वे तिब्बत के लिए अपनी संप्रभुता का औपचारिक मान्यता हासिल कर लें।

चीन के विदेश नीति के करीब हर मामले में इस मसले की छाप को देखते हुए इन खराब तरीके से रची गई नीतियों की कीमत निश्चित रूप से तिब्बत के परे भी चुकानी पड़ेगी और इससे आमतौर पर चीन के उभार पर संदेह कायम होगा। अभी तक चीन अपने अंतरराष्ट्रीय दायित्वों को स्वीकार करता रहा है, लेकिन तिब्बत में मानवाधिकार की स्थिति लगातार बिगड़ रही है, यह एक ऐसा राजनीतिक घाव है जो चीन के मौजूदा करीब एक चौथाई भौगोलिक क्षेत्र में तक फैला हुआ है।